पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की त्रैमासिकी

वर्ष-2; अंक-4; अक्तूबर-दिसंबर, 2017

इस अंक में

संपादकीय	*बल्देव भाई शर्मा*	2
पाठकीय प्रतिक्रिया		3
कहानी	**इंतज़ार** *–उषा छाबड़ा*	4
कहानी	**बेबसी** *–पूनम तिवारी*	6
आलेख	**लोक आस्था का अनूठा पर्व : बस्तर दशहरा** *–रुद्र नारायण पाणिग्रही*	9
आलेख	**त्रिलोचन की कविता** *–वैद्यनाथ झा*	14
आलेख	**पुस्तकीय संस्कृति : दशा एवं दिशा** *–डॉ. पराक्रम सिंह*	18
आलेख	**इसी शहर में लाइब्रेरी हुआ करती थी....** *–कौशलेंद्र प्रपन्न*	21
आलेख	**न्यास के 60 साल**–*दीपक कुमार गुप्ता*	24
कविता	**देह-किताब** *–डॉ. राजकुमार 'सुमित्र'*	27
कविता	**बूँदों की अठखेलियाँ** *–अशोक 'अंजुम'*	28
व्यंग्य	**छत पर धूप खाते हुए एक रिश्ते की तलाश**–*जवाहर चौधरी*	29
साक्षात्कार	**भारत की भाषाओं का बहनापा मुझे ऊर्जा देता है** *–डॉ. रविप्रकाश टेकचंदाणी*	31
आलेख	**संवाद और संप्रेषण का सशक्त माध्यम : पत्र-साहित्य** *–डॉ. राजेश चंद्र पांडेय*	33
लघुकथा	**संकट**–*विजयानंद विजय*	38
पुस्तक समीक्षा		39
पुस्तकें मिलीं		56
साहित्यिक गतिविधियाँ		58

प्रधान संपादक
बल्देव भाई शर्मा

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

परामर्श
राजीव रंजन गिरि

संपादकीय सहयोग
दीपक कुमार गुप्ता

विज्ञापन एवं प्रसार
कंचन वांचु शर्मा
नरेंद्र कुमार

उत्पादन
तरुण दवे, अनुज भारती

रेखाचित्र
पार्थ सेन गुप्ता

सज्जा/डिजाइन
ऋतुराज शर्मा

शब्द संयोजन/कार्यालयीन सहयोग
सुभाष चंद्र, प्रवीन कुमार

सदस्यता शुल्क
व्यक्तियों के लिए
एक प्रति : ₹ 35.00
वार्षिक : ₹ 125.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र व्यवहार
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707876
ई-मेलः editorpustaksanskriti@gmail.com
प्रकाशक व मुद्रक सतीश कुमार द्वारा
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत) नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और रेक्मो प्रेस प्रा. लि., ओखला, नई दिल्ली से मुद्रित।

संपादक : पंकज चतुर्वेदी

सर्वाधिकार सुरक्षित :
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

'मैं' का 'हम' हो जाना ही आस्तिकता

ब्रज क्षेत्र में एक कहावत है—ज्ञानी ते ज्ञानी मिले करे ज्ञान की बात, मूरिख ते मूरिख मिले कै घूँसा के लात। जब दो ज्ञानी मिलते हैं, तो ज्ञान की बात करते हैं लेकिन जब दो मूर्ख मिलते हैं तो कोई एक-दूसरे की बात नहीं सुनना चाहता है, न मानना। दोनों अपनी-अपनी बात मनवाने के लिए लात-घूँसों पर उतर आते हैं। वास्तव में तो ज्ञान एक सकारात्मक ऊर्जा है, वह लड़ना या विवाद करना नहीं सिखाता, मनुष्यता का जो पोषक है, हितकर है उस पर चलना सिखाता है ज्ञान। मनुष्यता का अर्थ मानव देह भर नहीं है। मन का विस्तार ही मनुष्यता है यानी मैं का हम हो जाना। इस 'हम' में संपूर्ण सृष्टि का बोध है, उसके साथ परस्पर पूरकता का संबंध है। संत तुलसीदास ने श्रीरामचरित मानस में लिखा है—जड़ चेतन जल जीव नभ सकल राममय जान। जब सब में राम समाया है, तो भेद कैसा, फिर 'मैं' अकेला कहाँ है, वह तो संपूर्ण का एक अंश मात्र है। निरालम्बोपनिषद में 'सर्वखल्विंद ब्रह्म' कह कर इसी भाव को परिभाषित किया गया है।

'मैं' को जान लेना ही सच्चा ज्ञान है, यहीं से जीवन का विस्तार शुरू होता है। इसे जान ले वही ज्ञानी है। इसीलिए हमारे शास्त्रकारों ने कहा 'आत्मनां विद्धि' अपने को जानो। भगवान बुद्ध ने भी 'अप्प दीपो भव' का मंत्र देकर ज्ञान का यही मार्ग दिखाया। गीता में इसी भाव बोध को ज्ञान योग कहा गया है कि 'मैं' के कर्त्ताभाव (ऑब्जेक्टिविटी) को खत्म करो तो कोई संशय नहीं रहेगा। संशय ही सारे क्लेश व विवाद की जड़ है, यह प्रश्नाकुलता या जिज्ञासा नहीं है। यह तो बाल की खाल निकालने जैसा है, इसमें कुतर्क है, विवाद है, किसी निष्कर्ष पर पहुँचने का भाव नहीं, विमर्श नहीं। बस एक जिद है कि मुझे इसे नहीं मानना। इस प्रकार का संशय कभी खत्म नहीं होता, यह मूढ़ता है ज्ञान नहीं। इसीलिए गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है 'संशयात्मा विनश्यति' इसी संशय को खत्म करते हुए तुलसीदास ने लिखा—'रामहि केवल प्रेमु पियारा, जान लेउ सो जाननिहारा' यानी राम और प्रेम दोनों पर्याय हैं, जो राम को नहीं मानता, लेकिन प्रेम को मानता है तो राम से अलग कैसे हुआ?

यह प्रेम ही 'मैं' को दूसरों से जोड़ता है, सारे भेद-स्वार्थ-द्वेष मिटाता है। सबके साथ यानी केवल मानव नहीं बल्कि जीव-जगत, प्रकृति से जुड़कर उसका अंग बनकर जो जीता है वही तो आनंद पाता है। जीवन के प्रति यह दृष्टि रखना ही आस्तिकता है, जिसमें इस दृष्टि या सोच का अभाव है वही नास्तिक है। वस्तुतः आस्तिकता या नास्तिकता का अर्थ ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करना या न करना, ईश्वर को मानना-न-मानना नहीं है। इस विवाद में पड़े रहना या तर्क-कुतर्क में उलझना अपने ज्ञान और शक्ति को व्यर्थ गँवाना है। तुलसीदास ने लिखा है—'ईश्वर अंस जीव अविनासी, चेतन अमल सहज सुख रासी।' प्रत्येक जीव ईश्वर का अंश है, इस ईश्वर को शक्तिपुंज, ऊर्जा या प्रकृति भी कह सकते हो यदि ईश्वर शब्द से चिढ़ है तो, लेकिन भाव यही है कि सब में एक ही तत्व समाया है। श्री गुरुवाणी में भी 'मानुख की जात सबै एक' का भाव व्यक्त किया गया है। यह जो तत्व सब में समाया है जिसे ईश्वर का अंश कहा गया है, वही आत्मा है जो अविनाशी है यानी कभी मरती नहीं है, यह नित्य, चैतन्य, निर्मल और आनंदमय है, व्यक्ति अपनी कुबुद्धि से, संकीर्ण सोच से, मेरा-तेरा के भेद से इसको दुख, कलुष और मूढ़ता से सराबोर करने में लगा रहता है और खुद ही उनके ताप को झेलता रहता है। शास्त्रों के इस आत्मतत्व को साहित्य में यहाँ तक कि फिल्मी गानों में भी बखूबी दर्शाया गया है, पर व्यक्ति का अहंकार, अज्ञानता, लोभ उसे समझने नहीं देता, फिल्म अनाड़ी में बड़ा सुंदर भाव व्यक्त करने वाला गीत है—'किसी का दर्द मिल सके, तो ले उधार/किसी की मुस्कराहटों पे हो निसार/किसी के वास्ते हो तेरे दिल में प्यार/जीना इसी का नाम है' जीवन के इस अर्थ को समझना, इसमें विश्वास करना ही आस्तिकता है। यह फिल्मी गीत ईशावास्योपनिषद के इस संदेश को व्यक्त करता है—'ईशावास्यामिदं सर्वं यत्किंचित् जगत्यांजगत् तेन त्यक्तेन भुंजीथा मागृधः कस्यस्विद्धनम्।' इसका आशय यही है कि ईश्वर का वास कण-कण में है, इसलिए पदार्थों का उपभोग करते समय यह ध्यान रखें कि दूसरे का हिस्सा भी तुम न हड़प लो। जीवन में इससे ज्यादा व्यापक कोई चिंतन हो सकता है? आज जिन तमाम विचारधाराओं के नाम पर मानव हित की बात करते हुए भीड़ जुटाई जाती है या अनेक तरह के पंथ प्रचलित कर दिए गए, उनसे बहुत पहले भारतीय चिंतन की दिशा यह थी।

यही आत्म ज्ञान है कि 'मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, क्या करना है और कहाँ जाना है' के मर्म को समझें। वेद में कहा गया है—आत्मानमन्विच्छ यस्तं वेद स वेदवित् यानी आत्मज्ञान का पर्याय ही वेद है, आज घर-परिवार से लेकर देश-दुनिया तक जो संघर्ष, वैमनस्य या मार-काट दिखती है वह इस आत्मज्ञान की कमी के कारण है। एक प्रसंग आता है कि अद्वैत वेदांत के प्रवर्तक आद्य शंकराचार्य काशी प्रवास के दौरान एक चांडाल को सामने आते देख उससे बचने लगे तो चांडाल ने कहा कि मुझसे क्यों बच रहे हो। मेरे अंदर भी तो वही ब्रह्म है जिसके तुम उपासक हो, फिर मुझमें-तुममें भेद कैसा? सुन कर शंकराचार्य की आँखें खुल गईं, उन्होंने क्रोध में आकर यह नहीं कहा कि तुम चांडाल होकर मुझे ज्ञान दे रहे हो। बल्कि शंकराचार्य ने उसके चरण पकड़ लिए कि तुमने मेरा अज्ञान दूर कर दिया, यही तो असली अद्वैत वेदांत है। बताते हैं कि काशी के अधिष्ठाता शिव ने स्वयं चांडाल का रूप धारण कर शंकराचार्य को सही राह दिखाई। यह अद्वैत भाव ही तो आस्तिकता है, इसी को कबीर ने प्रेम के रूप में गाया है। इसे न मानना ही नास्तिकता है। जीवन में या खुद में विश्वास न करने वाला ही सबसे बड़ा नास्तिक है। भारतीय चिंतन बहुत उदार और व्यापक है, इसमें आस्तिकता नास्तिकता का भेद है ही नहीं। चार्वाक् तो ब्रह्म को नहीं मानते थे। वह देह के उपासक थे। उनका दर्शन था 'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्/ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्/भस्मी भूतस्य देहस्य पुनर्जन्मनो कुतः। जब तक जीओ मौज-मजे के साथ जीओ चाहे उसके लिए कर्ज लेकर घी पीना पड़े यानी सुख के साधन जुटाने पड़ें। क्योंकि यह देह तो एक दिन खाक में मिल जानी है। फिर दूसरा जन्म किसने देखा है। लेकिन इन चार्वाक को भी ऋषि परंपरा में रखा गया। इस दर्शन को जनस्वीकृति नहीं मिली क्योंकि यह 'मैं' तक केंद्रित है। आज चारों ओर यही क्लेश दिखता है, कहीं मन-मुटाव के रूप में तो कहीं लड़ाई-झगड़े, खून-खराबे के रूप में या अपराध के रूप में। इससे सारी मानवता त्रस्त है। मैं को जब सबके साथ जोड़ दोगे, तब सबके सुख-दुख में अपना सुख-दुख और सबके उन्नयन में अपना उन्नयन दिखने लगेगा। यही आत्मज्ञान है, यही आस्तिकता है, यही वेद-पुराण-उपनिषदों का सार है। तुलसीदास ने इसी को धर्म कहा है—'परहित सरिस धरम नहीं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई'।

(बल्देव भाई शर्मा)

प्रधान संपादक, पुस्तक संस्कृति

पाठकीय प्रतिक्रिया

'पुस्तक संस्कृति' पत्रिका का अप्रैल-जून 2017 अंक मिला। मैंने पूरी पत्रिका आद्योपांत पढ़ी। सबसे पहले तो संपादकीय में बल्देव भाई शर्मा जी ने वर्तमान शिक्षा से संबंधित अत्यंत विचारोत्तेजक चिंतन प्रस्तुत किया है। उनका कहना सही है कि मैकाले द्वारा प्रस्तावित शिक्षा को अपनाने के कारण 'हम जो थे वे तो रहे नहीं, जो बनाने का प्रयास किया गया, वह बन नहीं पाए'। इसी प्रकार उनका यह कहना भी सोलह आने सत्य है कि 'इतिहास की अवमानना कर कोई समाज या देश दुनिया में आगे नहीं बढ़ सकता।' एक सारगर्भित संपादकीय के लिए बधाई। वरिष्ठ कवि डॉ. रामदरश मिश्र एवं डॉ. नरेंद्र मोहन की कविताएँ मर्मस्पर्शी हैं। भगवान अटलानी की कहानी पढ़ते हुए मुक्तिबोध की डायरी का एक अंश स्मरण हो आया। अरुण खरे की कहानी अभिभावकों की महत्त्वाकांक्षाओं के बच्चों पर होने वाले दुष्प्रभाव दिखाती है तो मृदुला श्रीवास्तव की कहानी गरीबी के दुष्प्रभाव। दोनों साक्षात्कार नवीन जानकारी एवं प्रेरणाप्रद हैं। पत्रिका में व्यंग्य की कमी खली, कृपया ध्यान दें। आपको एवं आपके सभी सहयोगियों को एक सार्थक पत्रिका प्रकाशित करने के लिए साधुवाद।

—डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'
श्रीराम कॉलेज ऑफ कॉमर्स, दिल्ली

साहित्य, संस्कृति व कला की त्रिवेणी 'पुस्तक संस्कृति' का अप्रैल-जून 2017 अंक पढ़कर अतीव प्रसन्नता हुई। यूरोपीय देशों में भारतीय शिक्षा की उपेक्षा और इसकी पुनर्प्रतिष्ठा हेतु शिक्षा को आध्यात्मिक चेतना का आधार बनाए जाने की जरूरत को बंधुवर बल्देव भाई जी शर्मा ने अपने संपादकीय में चिंतनपरक ढंग से रेखांकित किया है। गंगा और करमा नृत्य से संबंधित आलेख जीवंत बन पड़े हैं। अभिभावकों की आरोपित महत्त्वाकांक्षाओं के शिकार बच्चे किस कदर दबाव, तनाव व साँसत झेल रहे हैं, इसका मर्मभेदी चित्र उकेरा है 'दूसरा राजमहर्षि' कहानी में अरुण अर्णव खरे ने। बुजुर्ग जीवन की त्रासदी पर केंद्रित 'वृत्त के कोण' भी दिल को छूने वाली कथा है। डॉ. रामदरश मिश्र की अनुभूतिपरक कविताएँ अभिभूत किए बगैर नहीं रहतीं। समीक्षा के लिए भी आपने अच्छा-खासा स्पेस दे रखा है। आवरण कुदरत और लोककला का नायाब नमूना है। पुस्तक संस्कृति को समृद्ध करने की इस सकारात्मक पहल के लिए हार्दिक बधाई!

—भगवती प्रसाद द्विवेदी
मीठापुर, पटना (बिहार)

आपकी पत्रिका 'पुस्तक संस्कृति' मिली। पढ़कर मुग्ध हुआ (जून 2017)। आपको तथा आपके संपादकीय परिवार को हार्दिक बधाइयाँ!

आपका संपादकीय आलेख भारतीय शिक्षा पद्धति के गिरते स्तर पर चोट करने वाला है। आपने लंदन में एक भारतीय स्नातक की दयनीय हालत का जिक्र किया, जो क्रूर वास्तविकता है। किंतु वहाँ के शिक्षा संस्थानों का भी अवलोकन करते! मैंने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में एक केंद्र को देखा जहाँ सात शोधार्थियों के लिए दस प्रोफेसर कार्यरत थे और हमारे यहाँ 70 छात्रों पर भी एक अध्यापक नहीं मिल पाता।

मैं आपकी बात से सहमत हूँ—शिक्षा पद्धति में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है।

मैं पुनः पत्रिका की सामग्री और चित्रमय कवर की तारीफ करना चाहता हूँ। क्यों नहीं इस उपयोगी पत्रिका को मासिक रूप में प्रकाशित करना आरंभ करें, जिससे इसकी सामयिकता बनी रहे?

—राधाकांत भारती
पीरागढ़ी, नई दिल्ली

'पुस्तक संस्कृति' का जुलाई-सितंबर-2017 अंक प्राप्त हुआ। विज्ञान केंद्रित यह अंक पढ़कर अत्यंत प्रसन्नता हुई। पत्रिका में साहित्य, संस्कृति और विज्ञान का अद्भुत समन्वय दिखाई दिया। पत्रिका के हर अंक में संपादक महोदय की लगन और दूरदृष्टि स्पष्ट दिखाई देती है। एक बार प्रतिष्ठित कवि कुँवर नारायण जी ने मुझसे एक बातचीत में कहा था कि विज्ञान भी बड़ा काव्यमय है। विज्ञान केंद्रित यह अंक पढ़कर मुझे पुनः उनका यह कथन याद आ गया। विज्ञान को यदि साहित्य के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाया जाए तो सुखद परिणाम सामने आ सकते हैं। संपादकीय में बल्देव भाई शर्मा जी ने सटीक बात कही है कि यदि विज्ञान मानवीय संवेदनाओं पर हावी हो जाए तो विनाशकारी साबित हो सकता है। दरअसल इस दौर का साहित्य केवल कल्पना पर आधारित नहीं है, वह यथार्थ को महत्त्व दे रहा है। इसलिए इस दौर में यदि साहित्य की संवेदनाएँ विज्ञान के साथ जुड़ जाएँ तो विज्ञान की नवीनतम खोजों के माध्यम से होने वाली विनाशलीला की संभावना को काफी हद तक टाला जा सकता है। इस अंक के सभी आलेख और कहानियाँ स्तरीय लगीं। आजकल पत्रिकाओं में पुस्तक समीक्षाओं के लिए स्थान कम होता जा रहा है। 'पुस्तक संस्कृति' में समीक्षाओं के लिए पर्याप्त स्थान देकर आपने सराहनीय कार्य किया है। पत्रिका की सामग्री के अंत में यदि एक पेज संपादक महोदय की टिप्पणी के लिए भी हो तो बेहतर होगा।

—रोहित कौशिक
मेरठ

जुलाई-सितंबर-2017 का विज्ञान विशेषांक मिला। यह अंक पठनीय व ज्ञानवर्धक है। 'धर्म के बिना विज्ञान लंगड़ा है' में बल्देव भाई शर्मा जी ने बहुत ही सारगर्भित एवं महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किए हैं, जो मन को छू गए। यदि हम यह कहें कि लेखक ने गागर में सागर भर दिया है तो अतिशयोक्ति न होगी। डॉ. मनीष मोहन गोरे का लेख 'आर्द्र भूमि : पानी के प्राकृतिक रखवाले' कृष्ण गोपाल व्यास का आलेख 'भविष्य तलाशती सूखी नदियाँ' पर्यावरण के प्रति चेतना जगाने वाले हैं। इसी प्रकार 'अहिंसक चिकित्सा की पारंपरिक विधियाँ' में उपयोगी जानकारी डॉ. ए. के. अरुण ने उपलब्ध कराई है। पत्रिका का कलेवर उच्च स्तरीय है।

—डॉ. के.जी. दीक्षित 'दद्दा जी'
विनायकपुर, कानपुर (उ.प्र.)

इंतज़ार

उषा छाबड़ा

पिछले बीस वर्षों से दिल्ली पब्लिक स्कूल, रोहिणी में अध्यापन कार्य में संलग्न। नर्सरी से कक्षा आठवीं तक के स्तर के बच्चों के लिए पाठ्य-पुस्तकों का लेखन, कुछ कहानियाँ विभिन्न पत्रिकाओं में भी छपी हैं। बच्चों एवं शिक्षकों के लिए वर्कशॉप संचालित करती हैं। बच्चों को कहानियाँ सुनाना बेहद पसंद है।

संपर्क : chhabrausha@gmail.com

रानी अपने घर में सोफे पर बैठी सोचे चली जा रही थी। उसका मन किसी काम में नहीं लग रहा था। बार-बार उसे राकेश की याद आ रही थी। राकेश जो कुछ वर्षों पहले ही विदेश चला गया था। शुरू-शुरू में तो उसकी कुछ ई-मेल आई थीं, पर अब उससे संपर्क टूट चुका है। राकेश से वह बहुत नाराज थी। दो महीने से उसका कोई अता-पता नहीं। जाने वह कहाँ है, कैसा है! वहाँ बैठे-बैठे अपने ख्यालों में खो गई।

राकेश के साथ समय तो जैसे पंख लगाकर उड़ जाता था। ऑफिस से उसके साथ ही निकलना और फिर उसके साथ घूमने निकल जाना। कभी किसी फिल्म को देखने, तो कभी अपने घर का कोई सामान खरीदने। कितनी ही मुलाकातें उसकी आँखों के सामने से निकल रही थी। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह उसके बिना अपना खाली वक्त कैसे बिताए!

जब से राकेश विदेश गया था, शाम को सीधी घर ही आती थी। घर क्या, बस चारदीवारी से घिरे दो कमरे! सिर्फ सन्नाटा, और कुछ नहीं! घर की ओर देखने का मन ही नहीं करता था। उसकी जिंदगी अधूरी-सी हो गई थी। थोड़ी बहुत सफाई की, कुछ बनाया, बुझे मन से खाया, किसी किताब के पन्ने पलटे, बस धीरे-धीरे आँखें बोझिल हुईं और नींद आ गई। कई बार तो आधी रात में ही नींद टूट जाती और फिर आने का नाम ही नहीं लेती और राकेश को ई-मेल लिखने बैठ जाती जिनका जवाब आने की उम्मीद भी अब शायद खत्म हो रही थी। था तो केवल इंतज़ार!!

आज बाहर गर्मी बहुत पड़ रही थी। रविवार का दिन था। ऑफिस में भी तो छुट्टी थी। बहुत दिनों बाद घर की ओर ध्यान गया था उसका! जगह-जगह मकड़ी के जाले झूल रहे थे और उसे कभी जैसे दिखाई

ही नहीं दिए थे। सुबह से वह घर की सफाई में लगी हुई थी। दोपहर तक तो थककर चूर हो चुकी थी।

अभी सोकर उठी ही थी और खिड़की के पास आकर बैठ गई। उसने पर्दा हटाया और खिड़की से बाहर झाँका। शाम हो रही थी। बाहर देखा तो आसमान पर काले बादल एक ओर से घिर रहे हैं। बादलों के साए में सूरज ऐसे छिप रहा है जैसे कि वह राकेश के आगोश में चुपचाप छिप जाती थी। न चाहते हुए भी राकेश को वह अपनी यादों से जुदा नहीं कर पा रही थी। वही तो था जिसने इस अनजान शहर में उसे सहारा दिया था। इस नए शहर में वह अकेली नौकरी की खातिर आई थी। वह तो किसी को भी नहीं जानती थी। राकेश ने ही तो उसकी सूनी जिंदगी में रंग बिखेरे थे।

वह अब आँगन में आकर खड़ी हो गई थी। दूर पेड़ पर बैठी चिड़िया भी बार-बार अपने घोंसले से बाहर आ-जा रही थी जैसे कि उसे भी बारिश का इंतज़ार हो। झुलसती गर्मी में वह भी बेहाल-सी जान पड़ रही थी। देखते ही देखते ठंडी-सी बयार चल पड़ी। पेड़ों की पत्तियाँ जैसे हवा के संग अठखेलियाँ कर रही थीं।

ऊपर काले बादल अलग-अलग आकार लिए उमड़-घुमड़कर आ रहे थे जैसे कि किसी अतिथि के आने का संदेश दे रहे थे। सारे पेड़-पौधे जैसे इस संदेश को सुन झूम पड़े थे।

सिर्फ पेड़-पौधे ही क्यों, क्या मनुष्य नहीं! नीचे चलते हुए लोग, जिनके चेहरे पर कुछ समय पहले चिंता की लकीरें थीं, प्यास बुझाने के लिए जहाँ पानी बटोरने की जद्दो-जहद में पड़े थे, वे भी बारिश के आगमन की ख़ुशी को अपने चेहरे से छिपा नहीं पा रहे थे।

टप! पहली बूँद गिरी, जिसे प्यासी धरती ने सोखने में एक पल भी नहीं लगाया, बूँद पूरी तरह गायब हो गई। फिर, टप-टप-टप---- और जैसे कि किसी नृत्यांगना के पायल की झंकार सबको मदमस्त करने लगी हो।

नन्ही बूँदें धरती की प्यास बुझा रही थीं। रानी मौसम के बदलाव से मन में बदलाव महसूस कर रही थी। जैसे कुछ बूँदें उसके चेहरे पर पड़ी, उसे राकेश से मिलने का वह दिन याद आ गया जब ऑफिस के बाहर यूँ ही खड़ी थी और बारिश हो रही थी। राकेश भी उसके ऑफिस में ही काम करता था और उसके पास आकर उसने अपनी गाड़ी रोकी। राकेश ने ही उसे तेज बारिश में घर पर छोड़ा था। बारिश में राकेश के साथ हुई पहली मुलाकात कितनी हसीन थी। मन में कुछ न होते हुए भी पता नहीं क्या था जो कि बार-बार दस्तक दे रहा था।

> **“बादलों के साए में सूरज ऐसे छिप रहा है जैसे कि वह राकेश के आगोश में चुपचाप छिप जाती थी। न चाहते हुए भी राकेश को वह अपनी यादों से जुदा नहीं कर पा रही थी। वही तो था जिसने इस अनजान शहर में उसे सहारा दिया था।”**

बारिश अब तेज हो रही थी और कितना अच्छा लग रहा था रानी को! आँगन में जैसे बारिश की बूँदें बेतहाशा गिर रही थीं जैसे कि कह रही हों कि लो, तुम्हारा इंतज़ार खत्म हुआ! नीचे सड़क पर धरती तृप्त होती दिखाई दे रही थी। आसपास पत्तों में बारिश की बूँदें गिर रही थीं तो ऐसा लग रहा था मानो जैसे कोई तबले पर ताल दे रहा हो। नीचे देखा, जो लोग सड़कों पर थे, वे इकट्ठे होकर पेड़ों के नीचे खड़े हो रहे थे। सभी को घर पहुँचने की बेताबी थी, पर फिर भी भीगते हुए उस वर्षा का आनंद ले रहे थे।

तभी रानी ने देखा, दूर एक झोंपड़ी दिखाई दे रही थी, टूटी-फूटी-सी! उसका छज्जा अंदर की ओर शायद चू रहा था। एक औरत कभी एक बर्तन लेकर किसी छेद के नीचे रखती तो कभी कोई बाल्टी लेकर अपने घर के किसी एक कोने की ओर भागती। कभी कोई सामान गीला होने से बचाती तो कभी कोई। चेहरे पर सिर्फ शिकन थी, कैसे बचा पाएगी वह अपने इस टूटे-फूटे आशियाने को!

उसका बच्चा इन सब बातों से बेखबर, अपने घर के बाहर खड़ा था। दीन-दुनिया से दूर, अपनी ही धुन में तरह-तरह बारिश की बूँदों से खेल रहा था। एक बूँद जैसे ही टपकती, उसे अपनी उँगलियों से छिटका देता, अपने चेहरे पर पड़ती नन्ही बूँदों को पोंछता जाता, खिलखिलाता हुआ हँसता। उसे कितना आनंद आ रहा था! उसके चेहरे पर कितनी खुशी थी! उसे सिर्फ अपना खेल समझ आ रहा था, बस खेल!! रानी भी उसे देखकर खिलखिला पड़ी। अपनी बातों को तो जैसे वह भूल ही गई। राकेश के प्रति उसके मन में जो मैल था, वह भी बारिश में धुल गया था। मिट्टी की सौंधी खुशबू में राकेश के साथ बिताए सुंदर पलों को अपनी यादों में समेटे, वह अपने कमरे में मुस्कराते हुए चली गई और एक बार फिर ई-मेल लिखने बैठ गई, इसी आशा में कि इस ई-मेल का जवाब अवश्य आएगा।

बेबसी

आज भी पूरा दिन यूँ ही निकल गया। सुबह से दोपहर, दोपहर से शाम, काम की तलाश में मानो शरीर का सारा पानी ही सूख गया हो। पेट के लिए तो वैसे भी पिछले दो दिनों से अन्न का दाना भी नसीब नहीं हुआ था। गाँव में सूखा पड़ने के बाद भुखमरी के हालात में रामलाल ने गाँव से शहर की ओर रुख किया। चार बच्चों और पत्नी के किसी तरह सिर छिपाने वास्ते ठौर बनाकर निकल पड़ा, दो जून की रोटी के जुगाड़ में, थोड़ी-सी मशक्कत के पश्चात् एक चूड़ी के कारखाने में जैसे-तैसे पेट भरने का इंतजाम हो गया। धधकती आग की लौ पर काँच पिघलाने से पेट की आग ठंडी होने लगी।

अभी कुछ माह ही बीते थे रामलाल को कारखाने में काम करते हुए। एक दिन तैयार फैंसी चूड़ी का बक्सा गोदाम में ले जाते वक्त हाथ से छूट गया। जमीन पर बिखरे रंग-बिरंगे काँच के टुकड़ों को रामलाल काँपती टाँगों व विस्फारित आँखों से यूँ देखने लगा, मानो काँच के टुकड़े नहीं, वह स्वयं टूटकर बिखर गया हो। उसे यूँ बुत बना खड़ा देख वहाँ काम कर रहे रामलाल के साथी एक स्वर में चिल्लाए, "भाग रामलाल, जल्दी भाग, बड़ा बेरहम है मालिक, बिना दिहाड़ी दिए, बंदी बनाकर भरपाई करवाएगा, जल्दी भाग यहाँ से, निकल बाहर।" अपने उतारे हुए कपड़े, चप्पल सब छोड़कर भागा वह सिर्फ कच्छा-बनियान में, हाँफता-डीपता नंगे पाँव कारखाने के बाहर आकर एक लंबी-सी साँस ली। उसे महसूस हुआ, यदि कुछ क्षण कारखाने से बाहर निकलने में और लग जाते तो शायद उसका दम ही घुट जाता।

कारखाने की आग अभी भी धधक रही थी, लेकिन रामलाल के घर का चूल्हा ठंडा पड़ गया था। बच्चे भूख-भूख की रट लगा कर बेहाल हुए जा रहे थे। बच्चों का मुरझाया सूखा चेहरा देखकर पिता व्याकुल हो रहा था।

उस घड़ी को और अपने आप को कोस रहा था। फर्श पर हाथ पटक-पटककर उन्हें दंडित कर चुका था जिन हाथों से चूड़ी का बक्सा छूटा था। रात गहरा गई थी, लेकिन नींद कोसों दूर थी। बच्चे श्वान निद्रा सो-जाग रहे थे, और निरंतर खाने की गुहार लगा रहे थे, "अम्मा, कुछ खाने को दो, बड़ी भूख लगी है।" बच्चों के लगातार एक ही राग सुन-सुन कर कान थक चुके थे, बच्चों की आवाजें अब रामलाल के कानों में शीशे पिघला रही थीं।

पूनम तिवारी

जन्म : 18 जुलाई, उत्तर प्रदेश।

कृतियाँ : *उपन्यास–* वक्त का तकाजा, खुशबू हरसिंगार की, निभाई वफा से; *कहानी-संग्रह–* रिश्तों की नदी, कभी मोम कभी बर्फ-सी पिघलती है जिंदगी; *नाटक–* कुछ तुम सोचो कुछ हम।

सम्मान : भारतीय परिषद्–भारतीय शिखर सम्मान; अखिल भारतीय हिंदीसेवी–मानद उपाधि। देश की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ, कविताएँ, ज्वलंत विषयों पर लेख प्रकाशित। दूरदर्शन, आकाशवाणी, ज्ञानवाणी से वार्ता, नाटक, कविताएँ तथा कहानियाँ निरंतर प्रसारित...।

वह दाँत पीसता हुआ उठा। उसे लगा, बच्चों का गला ही दबा दे। बंद हो जाए आवाज; न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी, दूसरे ही पल बच्चों की तरफ से ध्यान हटाकर पत्नी की ओर मुड़ा, जो बच्चे को पानी पिला-पिलाकर चुप कराने का असफल प्रयास कर रही थी। रामलाल ने अपनी सारी भड़ास बेकसूर पत्नी पर निकाल दी, "कैसी माँ हो तुम? बच्चों को चुप करवाकर सुला भी नहीं सकती।" गाँव की सीधी-सरल पत्नी जिसने शहर की भीड़ भरी सड़कों पर अभी तक ठीक से चलना भी नहीं सीखा था, पति को अनिमेष मूक देखती रह गई। रामलाल पत्नी से ज्यादा देर नजरें नहीं मिला सका। बाहर निकल गया। घुटनों पर सिर टिकाकर बैठ गया। फुटपाथ पर बैठकर भोर होने का इंतजार करने लगा। पत्नी को डाँटने के पश्चात् स्वयं आत्मग्लानि से भर गया। वह सोचने लगा, जब वह कमाकर भी लाता है, तब भी शायद ही किसी रोज पत्नी पूरा पेट भोजन कर पाती होगी। चार बच्चों और पति से जो बचा-खुचा मिलता वह अपने लिए उसे ही पर्याप्त समझती है। उसने कभी शिकायत नहीं की, रामलाल को आज पहली बार अहसास हुआ कि परिवार नियोजन के बारे में सोचा होता। चार बच्चों की जगह दो बच्चे होते तो उसकी मेहनत से कमाया हुआ कुछ हद तक पूरा पड़ जाता। विचारों का जाल बुनते-बुनते वहीं फुटपाथ पर लेट गया। चिंतातुर करवटें बदलता रहा। नींद तो कोसों दूर थी। भोर के चार बज रहे थे। रामलाल उठा। जिधर रास्ता समझ आया उधर ही चल पड़ा। न रास्ते का ज्ञान था, न मंजिल का पता था, बस चलता जा रहा था। चलते-चलते आ पहुँचा चौरास्ते वाले चौराहे पर। चौराहा दूधिया रोशनी से नहाया हुआ था। कुछ क्षण ठहर गया। चार रास्ते वह भी नितांत अनजान, चौराहे पर फैली रोशनी आँखों में चुभने लगी। शरीर का तापमान बढ़ने लगा। उसे महसूस हुआ, यदि कुछ क्षण और रुका तो कहीं शरीर में फफोले न पड़ जाएँ। वह भागा अपने शरीर में मौजूद पूरे दम के साथ, रुककर पलटा, रोशनी बहुत दूर हो चुकी थी। वह अपने आप से ही बुदबुदाया, "हम गरीब को रोशनी नहीं, रोटी की दरकार है।" चलते-चलते आ पहुँचा स्टेशन के बाहर, शायद कोई गाड़ी अपने गंतव्य पर पहुँची थी। कुछ मुसाफिर अपना सामान स्वयं उठा सकने में समर्थ थे, लेकिन कुछ नजाकतवश और कुछ शारीरिक अक्षमतावश कुली की तलाश में थे। रामलाल भी आगे बढ़ा। काम मिलने की सुई नोंक समान उम्मीद से ही उसका मन का मयूर झूमकर नाच उठा। वह लपका

'कुली-कुली' की आवाज दे रहे एक सज्जन की ओर, हाथ जोड़कर बोला—

"बाबू साहब, सामान उठाएँ?" दो बड़े ब्रीफकेस, एक बड़ा बैग, एक गत्ते का डिब्बा, कूल जग सब कुछ लाद दिया। शरीर में बिना कुछ खाए-पिए जान तो थी नहीं, लेकिन चार पैसे मिल पाने की ललक से, न जाने घोड़े जैसी ताकत कहाँ से आ गई थी। अभी दस पंद्रह कदम ही चला होगा। उधर से जिन सज्जन का सामान था उनका बेटा दौड़ता हुआ आ गया। पास आकर बोला, "बिल्ला नं. कितना है? कहाँ है बिल्ला?" रामलाल तो इन सबका मतलब भी नहीं जानता था। वह भौचक्का-सा देखता रहा, "पापा, आप भी, ये रेलवे का कुली नहीं है, पलक झपकते ही सामान इधर-उधर कर देते हैं ये लोग। उतारो सामान।" रामलाल ने लाख समझाने की कोशिश की। वह उठाईगीर नहीं, बेहद जरूरतमंद है, लेकिन यह बात सत्य है कि गेहूँ के साथ घुन भी पिसता है। अचानक अपना जीवन ही निरर्थक लगने लगा। जालिम दुनिया और बेदर्द लोगों के बीच से अपने को समाप्त करने के उद्देश्य से उसके कदम तेजी से प्लेटफॉर्म की ओर बढ़ रहे थे, और आँखों के सामने पटरी पर दौड़ती तेज रफ्तार की ट्रेन घूम रही थी। वह बढ़ता जा रहा था, तभी दो मासूम बच्चे सामने आकर खड़े हो गए, जिनकी उम्र तकरीबन रामलाल के बच्चों के बराबर थी। "बाबू, कुछ दे दो, बड़ी भूख लगी है। कुछ खाया नहीं है बाबू।" रामलाल के भीतर के जंगल के हारे पक्षी, सब एक साथ फड़फड़ाने लगे, मानो उसका आत्महत्या का यह फैसला उसके जीवन का सबसे बड़ा पराजय बन गया हो। वह अपने आप से ही बड़बड़ाने लगा। मैं एक मेहनती इंसान हूँ। आज परिस्थितियाँ प्रतिकूल हैं, कल अनुकूल होंगी। वह वापस स्टेशन से बाहर निकल कर चल दिया। रास्ते में एक ब्लड बैंक के पास रुका। अंदर गया। कुछ देर पश्चात् बाहर निकला। शरीर पीला पड़ा था, लेकिन आँखें खुशी से चमक रही थीं हाथ में पकड़े सौ-सौ के दो नोट देखकर।

जहाँ सामाजिक संस्थाओं से जुड़े कुछ लोग अपना खून जरूरतमंदों के लिए दान कर रहे थे, वहीं कुछ शराबी, नशेड़ी, जुआरी अपनी बुरी आदतों के चलते अपने शरीर का खून बेच रहे थे, किंतु रामलाल ने अपने बच्चों की क्षुधा शांत करने का जुगाड़ किया था अपने शरीर का खून बेचकर। भूख से आँतें सिकुड़ गई थीं। प्यास के कारण गला सूख रहा था। खून दान देने वालों के लिए वहाँ

जूस, ग्लूकोज पानी, व कुछ देर आराम करने के वास्ते बेंच की व्यवस्था ब्लड बैंक वालों ने कर रखी थी। रामलाल को महसूस हुआ कि वह बिना पानी पिए कुछ कदम भी आगे चलने में असमर्थ है। रामलाल वहीं पास पड़ी बेंच पर अपने को सँभालता हुआ बैठ गया। पानी के लिए वहीं पास की मेज पर रखे गिलासों में से एक पानी का भरा गिलास उठाने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि उधर से एक लड़का दौड़ता हुआ आया। जिसकी उम्र तकरीबन उन्नीस-बीस की रही होगी, शायद अपनी ड्यूटी के बीच ही यहाँ से उठकर किसी काम के लिए गया होगा। रामलाल के हाथ से पानी का गिलास छीन लिया और तेज आवाज में डाँटते हुए बोला—

"बड़े अजीब आदमी हो। यहाँ पहली बार आए हो क्या?" रामलाल ने पानी के गिलास की ओर ताकते हुए 'हाँ' में सिर हिला दिया।

"इसीलिए तुम्हें यहाँ के कायदे-कानून नहीं मालूम हैं। तुम जैसे दारूबाजों को यहाँ ये ग्लूकोज नहीं पिलाया जाता है। ये सारे इंतजाम उन भले लोगों के लिए हैं जो मुफ्त में अपना खून दान देते हैं। समझे तुम, तुम्हें तो अपने पैसे मिल गए न?"

"हाँ, बस थोड़ा सिर घूम रहा था, गला भी सूख रहा था।"

"उठो यहाँ से, जो पैसे मिले हैं, बाहर जाकर उससे अपनी प्यास बुझाओ, वैसे भी इस सफेद ग्लूकोज पानी से तुम्हारी प्यास कहाँ बुझेगी। जाओ, दो-चार पन्नी अपने हलक में उतारो। उठो, यहाँ की बेंच खाली करो।" रामलाल उठा, बिना कुछ बोले चल दिया। सड़क किनारे सार्वजनिक नल की तलाश में, जानता था अपनी सफाई में कुछ बोलना बेकार है, उसकी हकीकत कौन सुनेगा, यदि सुन भी लिया तो मानेगा कौन?

रामलाल को किसी तरह कई फाकों के पश्चात् एक पंसारी की दुकान पर सौदा तौलने का काम मिल गया। रामलाल की खुशियों के पंख फैल गए। दुकान से

> **"एक मैदान में लगे कार्निवाल, वहाँ लोगों की ऐसी भीड़ मानो पूरा शहर यहीं एकत्रित हो गया हो। रामलाल ने कूड़े के ढेर से उठाया ब्लेड धीरे से अपनी जेब से निकालकर अपने हाथ में ले लिया और तेजी से भीड़ में घुस गया।"**

घुना-फफूँदा ही सही अनाज व कुछ पैसे तो मिलेंगे, जिससे बच्चों की भूख की व्याकुलता तो नहीं देखनी पड़ेगी। एक पिता व पति के लिए बेरोजगारी सबसे बड़ा अभिशाप है। रामलाल मेहनत, लगन व ईमानदारी से सुबह दस बजे से रात्रि के नौ बजे तक काम करता यानी पूरे ग्यारह घंटे, किंतु मालिक उसके ईमानदारी से सौदा तौलने पर उसे कई बार डाँटता भी रहता। मंगलवार की बंदी के दिन भी रामलाल को दुकान में बुलाकर सभी खाद्य सामग्री में मिलावट का काम करवाता। यह काम रामलाल को बिलकुल नहीं भाता, किंतु पुरजोर विरोध भी न कर पाता।

मालिक ने रामलाल को काली मसूर में काले छोटे कंकर मिलाने को कहा। स्वीकृति में सिर हिला दिया किंतु मालिक की नजर बचाकर कंकर फेंक दिए। दाल का वजन करने पर कंकरों का वजन दाल में नहीं आया। दाल का वजन उतने का उतना ही। रामलाल को मालिक ने धक्के मारकर दुकान से निकाल दिया।

रामलाल फिर से गलियों-गलियों नौकरी की तलाश में भटकने लगा। दूसरी दुकान में नौकरी माँगने गया, वहाँ के मालिक ने उसे पहचानते हुए पूछा, "तुम तो जनरल स्टोर में काम करते थे, क्यों छोड़ दिया वहाँ से"?

"साहब-वो....।" अभी रामलाल अपनी बात कह भी नहीं पाया था कि वहाँ बैठा दूसरा दुकानदार बोल पड़ा—

"अरे साले ने की होगी वहाँ चोरी, इसीलिए भगा दिया गया होगा।" रामलाल की बात सुने बिना ही वहाँ से भी भगा दिया।

"अरे भाई, जरूरत होते हुए भी हम तुम्हें यहाँ नहीं रख सकते। हमें कई बार दुकान अकेले भी छोड़नी पड़ती है तुम जैसों को छोड़कर दुकान साफ करानी है क्या? कोई भरोसे का आदमी चाहिए। चलो आगे देखो, हमें अपना काम करने दो। रामलाल की ईमानदारी ही उस पर भारी पड़ गई। उसे आज समझ में आया कि समय के साथ चलने में ही भलाई है।

रामलाल की सहनशक्ति की मानो परीक्षा हो रही हो। जेब में एक फूटी कौड़ी नहीं। छोटा बेटा बीमार हो गया। सरकारी अस्पताल से मुफ्त में दवा लिखकर दे दी गई, पर मिली नहीं। पचास रुपये की दवा के लिए सारे प्रयास कर डाले किंतु असफल व निराश खाली हाथ वापस लौट आया। बुखार तेज होता जा रहा था। डॉक्टर के कथनानुसार बुखार बढ़ने नहीं देना था। बच्चा बुखार में तपा जा रहा था। दिमाग पर असर होने का खतरा भी बढ़ता जा रहा था।

रामलाल फिर एक बार सड़क पर निकल पड़ा, मंजिल का पता नहीं था। बस तेज कदमों से चला जा रहा था। चेहरे पर बेचारगी नहीं। इस समय गुस्से व उत्तेजना के भाव थे। एक मैदान में लगे कार्निवाल, वहाँ लोगों की ऐसी भीड़ मानो पूरा शहर यहीं एकत्रित हो गया हो। रामलाल ने कूड़े के ढेर से उठाया ब्लेड धीरे से अपनी जेब से निकाल कर अपने हाथ में ले लिया और तेजी से भीड़ में घुस गया। कुछ देर पश्चात् उतनी ही तेजी से बाहर निकल आया। चेहरे पर आवश्यकता और पश्चाताप के भाव स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। बेहद मजबूरी में चुराया हुआ बटुआ अपनी जेब में रखकर तेज गति से दवाखाने की ओर बढ़ गया। अंततः परिस्थितियोंवश एक ईमानदार व्यक्ति के सब्र का बाँध आखिरकार टूट ही गया।

लोक आस्था का अनूठा पर्व : बस्तर दशहरा

रुद्र नारायण पाणिग्रही

जन्म : 15 जुलाई 1963

प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कविता, कहानी, व्यंग्य प्रकाशित। 'बस्तर : एक परिचय' (संपादन सहयोग), 'अतीत से आगत' (संपादन सहयोग), 'गोंचा पर्व की रथयात्रा', 'चिड़खा' (हल्बी, भतरी, गोंडी, दोरली कविता संग्रह), एक महाराजा मेरी नजर से।

संप्रति : सहायक पशु चिकित्सा क्षेत्र अधिकारी के पद पर जगदलपुर में पदस्थ।

संपर्क : 9425261457, 09752388123

ई-मेल : rudranarayanpanigrahi@gmail.com

बस्तर का ऐतिहासिक और विश्वप्रसिद्ध दशहरा राष्ट्रीय एकता का पर्व है, जिसे पूरे भारत वर्ष में मनाया जाता है। इसका लौकिक और धार्मिक महत्त्व भी है। इस महापर्व में प्राचीनकाल से जो आमंत्रण की परिपाटी चली आ रही है, वह आंशिक रूप से कुछ थोड़े बहुत फेरबदल के साथ आज भी विद्यमान है। बस्तर दशहरे की अपनी विशिष्ट पहचान है। दशहरे का वैभव ही कुछ ऐसा है कि सबको आकर्षित करता है। असत्य पर सत्य की विजय के प्रतीक महापर्व की दशहरे को पूरे देश में राम और रावण युद्ध में विजय के रूप में विजयादशमी के दिन मनाया जाता है, किंतु बस्तर दशहरा देश का ही नहीं वरन् पूरे विश्व का अनूठा महापर्व है, जो असत्य पर सत्य की विजय का प्रतीक तो है, मगर बस्तर दशहरे में रावण नहीं मारा जाता, अपितु बस्तर की आराध्या देवी माँ दंतेश्वरी सहित अनेक देवी-देवताओं की 75 दिनों तक पूजा-अर्चना होती है। बस्तर का यह पर्व विश्व में सबसे अधिक दिनों तक अर्थात् 75 दिनों तक चलने वाला पर्व है।

बस्तर का अद्वितीय दशहरा चालुक्य वंशीय राजपरिवार की इष्ट देवी तथा बस्तर अंचल के समस्त लोक जीवन की इष्ट व राज्य की आराध्य देवी दंतेश्वरी के प्रति श्रद्धा-भक्ति की सामूहिक अभिव्यक्ति का पर्व है। बस्तरांचल में धार्मिक दृष्टि से सर्वत्र शिव और शक्ति का वर्चस्व है। बस्तर में देवी पूजा सर्वोपरि है। यहाँ के लोकजीवन में वामाचारी शक्ति परंपरा का प्रभाव है, लोगों में पंच मकार का प्रचलन पाया जाता है इसलिए यहाँ शांति, अहिंसा और सद्भाव के प्रतीक बस्तर दशहरा पर्व में रावण वध नहीं किया जाता। विजयादशमी के अवसर पर रावण वध की परंपरा को नकारते हुए देवी पूजा अर्थात् शक्ति पूजा पर आधारित है।

1408 के पूर्व बस्तर अंचल में रथयात्रा का चलन नहीं था, उन दिनों नवरात्र में देवी-पूजा और शस्त्र-पूजा के माध्यम से उत्सवधर्मिता का पालन किया जाता था। बस्तर में दशहरा पर्व की रथयात्रा की शुरुआत चालुक्य वंशानुक्रम के चौथे शासक राजा पुरुषोत्तम देव के जगन्नाथपुरी यात्रा के

पश्चात् हुई थी। राजा पुरुषोत्तम देव ने 1408 ई. में जगन्नाथपुरी यात्रा की थी तथा वहाँ से 'रथपति' की उपाधि के साथ सोलह चक्कों का विशालकाय रथ प्राप्त कर मधोता में पहली बार दशहरा रथयात्रा का प्रारंभ संवत् 1468-69 (1411-12 ई.) के लगभग किया था। कई वर्षों के बाद 12 चक्कों के रथ संचालन में असुविधा होने के कारण आठवें क्रम के शासक राजा वीरसिंह के द्वारा दूसरी बार रथ के चक्कों का विभाजन किया गया। संवत् 1610 के पश्चात् बारह चक्कों का विभाजन करते हुए आठ और चार चक्कों के रथ में विभाजित किया गया। तब से आठ पहियों का विजय रथ और चार पहियों का फूल रथ प्रयोग में लाया जाने लगा और विजय रथ को खींचने की जवाबदारी किलेपाल परगना के माड़िया आदिवासियों को सौंपी गई, जो आज तक कायम है। ये आदिवासी आज भी अपने सौंपे गए दायित्वों का निर्वहन करते आ रहे हैं, आज भी रथ की रस्सी को किसी दूसरे व्यक्ति को हाथ नहीं लगाने देते।

चार और आठ चक्कों के रथों को राजपरिवार की कुलदेवी माँई दंतेश्वरी को समर्पित करते हुए दशहरा पर्व मनाने का निश्चय किया। इन रथों पर राजपरिवार की कुलदेवी, माँ दुर्गा के एक रूप, माँ दंतेश्वरी के छत्र को रथयात्रा के दौरान रथ पर आरूढ़ किया जाता है। इसलिए बस्तर दशहरा में फूल रथ चार चक्कों वाला होता है तथा भीतर रैनी और बाहर रैनी के लिए आठ चक्कों की रथ परिक्रमा का विधान है। प्रतिवर्ष एक नया रथ निर्मित किया जाता है।

पाट जात्रा

श्रावण मास विभिन्न पर्व-त्योहारों का महीना होता है, किंतु बस्तर अंचल में अनेक पर्व के साथ-साथ महापर्व के शुरुआत का महीना भी माना जाता है, जो विश्वप्रसिद्ध दशहरा के नाम से भी जाना जाता है। विश्वप्रसिद्ध बस्तर दशहरे का विधिवत् शुभारंभ श्रावण मास की अमावस्या से अर्थात् हरियाली अमावस्या से प्रारंभ होता है। दशहरा पर्व विधान के तहत प्रतिवर्ष रथयात्रा के लिए रथ निर्माण किया जाता है। अमावस्या के दिन नवीन रथ निर्माण के लिए लकड़ी का एक बड़ा टुकड़ा लाया जाता है जिसे 'टुरलु खोटला' कहा जाता है। इस लकड़ी के टुकड़े को स्थानीय दंतेश्वरी मंदिर के सामने रखा जाता है और रथ निर्माण में लगने वाले औजारों के साथ पूजा-अर्चना की जाती है। जिसे 'पाठ जात्रा' कहा जाता है। विधिवत् टुरलु खोटला पूजा का उद्देश्य यह होता है कि जिस निमित्त लकड़ी का तना लाया गया है, उसकी तथा अन्य स्थानीय देवी-देवताओं के साथ-साथ राज्य देवी अर्थात् दंतेश्वरी देवी की आराधना की जाती है। विभिन्न देवी-देवताओं का आवाहन कर निवेदन करता है कि इस वर्ष पर्व के लिए जो लकड़ी का तना लाया गया है, उस लकड़ी के तने से निर्विघ्न रथयात्रा के लिए रथ का निर्माण हो।

डेरी गड़ाई पूजा विधान

दूसरी रस्म को 'डेरी गड़ाई' अथवा 'स्तंभारोहण' कहा जाता है। साल प्रजाति की दो डेरी, स्तंभनुमा स्तंभ, जिसे परंपरा के अनुसार दशहरा पर्व के प्रारंभ होने से पूर्व स्थानीय सिरहासार में स्थापित किया जाता है। स्तंभों में हल्दी, कुमकुम, चंदन का लेप लगाकर दो सफेद कपड़े बाँधकर पुजारी पूजा संपन्न करता है। डेरी स्थापित करके दशहरा पर्व निर्विघ्न संपन्न करने की कामना की जाती है। इस डेरी गड़ाई के पश्चात् रथ निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ की जाती है। यह रस्म भादों शुक्ल पक्ष द्वादश अथवा तेरस के दिन पूर्ण कर ली जाती है। डेरी गड़ाई के साथ ही जंगलों से लकड़ी और निर्धारित गाँवों से कारीगरों का आना प्रारंभ हो जाता है। डेरी गड़ाई अर्थात् स्तंभारोहण के पश्चात् रथ निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ कर दी जाती है।

काछिन गादी

बस्तर अंचल में काछिन देवी, रण की देवी कहलाती हैं। 'काछिन गादी' का अर्थ होता है, काछिन की देवी को गादी अर्थात् गद्दी या आसन प्रदान करना, जो काँटों की होती है। काले रंग के कपड़े पहनकर काँटेदार झूले की गद्दी पर आसीन होकर जीवन में कंटकजयी होने का सीने में हाथ रखकर सांकेतिक संदेश देती हैं। काछिन देवी बस्तर दशहरा में प्रतिवर्ष निर्विघ्न आयोजन हेतु स्वीकृति और आशीर्वाद प्रदान किया करती हैं। काछिन देवी से स्वीकृतिसूचक प्रसाद मिलने के पश्चात् बस्तर का दशहरा पर्व धूमधाम से प्रारंभ हो जाता है। इस मंदिर का निर्माण चालुक्यवंशीय राजा दलपत देव ने लगभग 1772 के पश्चात् करवाया था। मान्यता के अनुसार, काछिन देवी पशुधन और अन्न-धन की रक्षा करती हैं। प्रतिवर्ष माहरा जाति की एक नाबालिग बालिका पर काछिन देवी आरूढ़ होती हैं। देवी की पूजा-अर्चना के पश्चात् बस्तर के ऐतिहासिक विश्वप्रसिद्ध दशहरा मनाने की एवं निर्विघ्न संपन्न कराने हेतु अनुमति माँगी जाती है।

एक दंतकथा के अनुसार, प्राचीन जगतूगुड़ा वर्तमान जगदलपुर के समीप कहीं से माहरा जाति के लोग आकर बस गए थे। बस्ती के मुखिया का नाम 'जगतू' था। 'जगतू' के समय में उसी के नाम पर 'जगतूगुड़ा' नामक एक कस्बा था, वही 'जगतूगुड़ा' आज वर्तमान बस्तर जिले का मुख्यालय 'जगदलपुर' कहलाया। कहा जाता है कि जगतू आसपास के घने जंगलों के जंगली और खूँखार जानवरों से परेशान था। जंगल से घिरी उस माहरा बस्ती में हिंसक पशुओं से प्राण बचाना मुश्किल हो गया था, तब एक दिन कबीले का मुखिया जगतू, बस्तर ग्राम तक गया और वहाँ के तत्कालीन चालुक्य नरेश दलपतदेव से मुलाकात की। उसने अपने और कबीले के सदस्यों की रक्षा के लिए

अभयदान माँगा। राजा दलपत देव आखेट-प्रेमी तो था ही, उसने जगतू को आश्वस्त किया और वचन दिया कि एक दिन समय देखकर शीघ्र ही आखेट की तैयारी के साथ जगतूगुड़ा पहुँचेंगे। उन दिनों राज्य का नाम 'चक्रकोट' के बदले 'बस्तर' प्रचलन में आ चुका था। पहली बार आखेट के दौरान जगतूगुड़ा उन्हें भा गया, इसलिए उन्होंने अपनी राजधानी बस्तर ग्राम से जगतूगुड़ा स्थानांतरित करने की ठान ली। यह सन् 1725 ई. के कुछ ही समय बाद की घटना है, बस्तर राजधानी से जगतूगुड़ा राजधानी स्थानांतरित की गई। इससे माहरा बस्ती के लोगों की जान में जान आई। माहरा बस्ती के लोग राजभक्त हो गए। राजा ने भी उस बस्ती को इतना सम्मान दिया कि दशहरा मनाने के लिए उस छोटी-सी बस्ती की कुलदेवी 'काछिन देवी' से प्रतिवर्ष आशीर्वाद माँगकर अपने आप को कृतार्थ माना। प्रथा चल पड़ी और बस्तर दशहरे का प्रारंभिक कार्यक्रम स्थिर हुआ।

अनुसूचित जाति की देवी को बस्तर के भूतपूर्व राजाओं द्वारा इस प्रकार प्राथमिक सम्मान दिया जाना इस बात की पुष्टि करता है कि चालुक्यों की दृष्टि में हरिजन अस्पृश्य नहीं थे। काछिन देवी बस्तर में मिरगान, पनका, चंडार और तिकड़ा (अनुसूचित) जातियों की कुल देवी मानी जाती हैं। बस्तर के इस ऐतिहासिक दशहरा पर्व के परंपरा और विधानों में 'काछिन गादी' की रस्म बस्तर राजधानी से जगदलपुर स्थानांतरित होने के बाद ही शुरू हुई प्रतीत होती है, उसके पूर्व काछिन देवी की प्राचीन गुड़ी या मंदिर का उल्लेख नहीं मिलता है।

रैला देवी की स्मृति

बस्तर दशहरा के अंतर्गत 'रैला देवी' का बड़ा ही हृदयस्पर्शी एवं कारुणिक चित्रण मिलता है। राजकुमारी रैला देवी का वही श्राद्ध-कर्म बस्तर के दशहरा पर्व में 'रैला पूजा' के नाम से जाना जाता है। इस देवी का अब तक कोई मंदिर नहीं है। गोल बाजार के अंदर एक स्थल पर प्रतिवर्ष काछिन देवी की पूजा के बाद संध्या के समय चिह्नित स्थल पर रैला देवी के आयोजन के लिए मिरगान जाति का पुजारी तथा इस जाति की महिलाएँ एकत्रित होती हैं। ग्राम तेलीमारेंगा से ही अनुसूचित जाति की कुँवारी कन्याएँ रियासत काल से परंपरा का निर्वहन करती आ रही हैं।

एक किंवदंती के अनुसार बस्तर के प्रथम चालुक्यवंशी नरेश अन्नमदेव की एक बहन थी। उसका नाम रैला देवी था। दुर्भाग्य से शत्रु सेना के सेनापति ने कभी उसका अपहरण कर लिया था। अपहरण कर लेने के बाद सेनापति ने उसे छोड़ भी दिया था, परंतु उसके कुलीन राजपरिवार ने उसे अपवित्र समझकर अस्वीकार कर दिया। सारे प्रमाण और तथ्य झूठे पड़ गए। कल तक राजघराने में पली-बढ़ी राजकुमारी को विधाता ने उसे राजमहल से बाहर का रास्ता दिखा दिया। तब उस राज्य के एक हरिजन परिवार को उस पर दया आई और उस हरिजन परिवार ने राजकुमारी को बड़े लाड़-प्यार से अपना लिया। परंतु रैला देवी को अपने राजपरिवार के व्यवहार से ऐसा आघात पहुँचा था कि एक दिन अवसर देखकर उसने गोदावरी नदी में जल-समाधि ले ली। राजपरिवार को इस अप्रत्याशित घटना से कोई लेना-देना नहीं था, उसे निष्कासित करके अपने राजवंश की मर्यादा तो उन्होंने पहले ही बचा ली थी, किंतु रैला देवी की जल-समाधि से मिरगान परिवार के लोगों को भारी दुःख पहुँचा। उस दिन से उन्होंने अपनी लाड़ली रैला का प्रतिवर्ष अपने ढंग से श्राद्ध मनाने का निश्चय किया और रैला देवी का वही श्राद्ध-कर्म बस्तर दशहरे में 'रैला पूजा' के नाम से जाना जाता है। इस श्राद्ध-कर्म में मिरगानी महिलाएँ आज भी रैला देवी के प्रति शोकगीत गाकर अपना शोक व्यक्त करती हैं।

नवरात्र : जोगी बिठाई

आश्विन शुक्ल पक्ष से दशहरा नवरात्र पूजा विधान प्रारंभ हो जाता है। इस अवसर पर स्थानीय देवी मंदिरों में कलश स्थापना की जाती है। प्रतिदिन इन मंदिर-देवालयों में संकल्प, चंडीपाठ आदि पूजा विधान संपन्न किए जाते हैं। नवरात्र के प्रारंभ से ही स्थानीय सिरहासार में जोगी बिठाने की प्रथा संपन्न की जाती है। योगी ही बस्तर के दशहरे के संदर्भ में जोगी की संज्ञा पाता है, जो दशहरा दर्शन में प्रमुख भूमिका तो निभाता है, किंतु रथ चालन का साक्षी और दशहरा समारोह का दर्शक नहीं होता बल्कि इसकी आराधना, साधना और संकल्प को सम्मान देते स्थानीय सिरहासार में लोग जोगी का दर्शन करते हैं।

आश्विन शुक्ल पक्ष को स्थानीय सिरहासार (प्राचीन शृंगारसार) में जोगी बिठाई की रस्म अदा की जाती है। एक मान्यता के अनुसार,

कभी दशहरे के अवसर पर एक हल्बा आदिवासी दशहरा निर्विघ्न संपन्न होने की कामना को लेकर अपनी सुविधा के अनुसार योग साधना में लगातार नौ दिनों तक राजमहल के समीप बैठ गया था। कुछ समय के बाद वह योगी आकर्षण का केंद्र बन गया। जोगी को बिठाने के लिए सिरहासार के मध्य भाग का चुनाव किया जाता है जहाँ एक गड्ढे में हल्बा जाति का एक व्यक्ति लगातार नौ दिनों तक योगासन की मुद्रा में बैठा रहता है, इस बीच जोगी फलाहार तथा दूध का सेवन करता है।

रियासत काल में राजा के द्वारा चयन किए जाने के पश्चात् से ही हल्बा जनजाति का जोगी इस परंपरा का निर्वहन करता आ रहा

है। एक ही परिवार से एक जोगी लगातार दो वर्षों तक नहीं बैठता। उसके ही परिवार का दूसरा व्यक्ति दूसरे वर्ष जोगी के रूप में बैठता है। एक वर्ष के अंतराल में बैठने के पीछे जोगी परिवार की मान्यता है कि लगातार दो या दो से अधिक वर्षों तक परिवार का कोई भी व्यक्ति नहीं बैठता। नवें दिन जोगी के समक्ष इष्ट देवी की पूजा करके जोगी उठाने की रस्म पूरी की जाती है। जोगी अपने स्थान से उठकर नौ दिनों के योग अनुष्ठान विधान से मुक्त हो जाता है।

फूल रथ परिक्रमा

जोगी बिठाने की प्रथा के दूसरे दिन परंपरा के अनुसार आश्विन शुक्ल पक्ष द्वितीया से लेकर सप्तमी तिथि तक चलने वाले फूल रथ की परिक्रमा का चरण प्रारंभ हो जाता है। इन तिथियों में प्रतिदिन रथ परिक्रमा होती है। ग्रामीण क्षेत्रों से आए हुए हजारों ग्रामीणों के द्वारा फूल रथ का खींचा जाना एक विहंगम दृश्य उत्पन्न करता है, जो यह बताता है कि भक्ति में कितना आनंद और सुख छिपा हुआ है। शक्ति परंपरा का यह ऐतिहासिक पर्व बस्तर दशहरा अपनी शान और विलक्षणता के लिए न केवल भारत में प्रसिद्ध है वरन् इसका अवलोकन करने के लिए विदेशियों की भी आमद बस्तर में होती है।

रथ ने अपने आकर्षण, जिसमें फूलों का बाहुल्य होता है, के कारण फूल रथ संज्ञा पाई थी। रियासत काल में देवी की डोली, रथ, छत्र से लेकर राजा की पगड़ी भी पुष्प प्रधान होती थी। यद्यपि अब कागज के फूलों और फुग्गों से सजा यह रथ परंपरा का पालन भले ही करता हो, किंतु रियासतकालीन फूल रथ परिक्रमा और वास्तविक सुंदरता का परिचायक है।

आश्विन शुक्ल पक्ष द्वितीया से सप्तमी तक प्रतिदिन होने वाली फूल रथ परिक्रमा के पूर्व माँई दंतेश्वरी का छत्र लेकर मुख्य पुजारी रथ पर आरूढ़ होता है। देवी के सम्मान में पुलिस के जवानों के द्वारा हर्ष फायर करके सलामी दी जाती है। रथ खींचकर जगन्नाथ मंदिर के सामने लाया जाता है जहाँ रथ परिक्रमा निर्विघ्न संपन्न हो, इस आशय को लेकर राउरीन तथा पनारा समाज की महिला के द्वारा नजर उतारी जाती है। रथ की नजर उतारकर उसे निर्विघ्न सिंह ड्योढ़ी तक पहुँचाने की मन्नत माँगी जाती है। नजर उतारने की इस रस्म में पनारा समाज की महिलाएँ रथ के ऊपर पाँच बार तथा भाव-विभोर होकर एक बार माँई जी के छत्र की ओर पुष्प-वर्षा करके नजर उतारती हैं तथा केवटा समाज की महिला के द्वारा चना, लाई तथा गुड़िया खाजा अर्पित करते हुए इस विधान को संपन्न करती हैं। यह परंपरा आज तक निर्बाध रूप से चली आ रही है।

रहस्यमयी निशा जात्रा

बस्तर दशहरे की रस्मों में आश्विन अष्टमी तिथि तथा नवमी तिथि को रथ परिक्रमा नहीं होती। यह आंचलिक देवी-देवताओं को बलि देकर प्रसन्न करने का दिन होता है। यह कार्य आधी रात को संपन्न किया जाता है। आधी रात को निशा जात्रा पर बकरों के अलावा कुम्हड़ा और मछली की बलि दी जाती है। लोगों का मानना है कि इससे अंचल में देवी की कृपा बनी रहती है। यह परंपरा रियासत काल से चली आ रही है। रियासतकालीन बलि की परंपरा में परिवर्तन अवश्य हुए हैं किंतु पशु बलि आज भी जारी है। जानकारों के अनुसार रियासतकाल में आधी रात को भैंसों की बलि दी जाती थी। भैंसों की बलि पर प्रतिबंध लगने के पश्चात् भी सैकड़ों बकरों की बलि प्रथा प्रारंभ कर दी गई जो कालांतर में परिवर्तन करते हुए अब यहाँ 12 बकरों की बलि देने की रस्म बनकर रह गई है।

अनुपमा थियेटर के समीप निशा जात्रा गुड़ी स्थित है। माना जाता है कि इस गुड़ी में माता दंतेश्वरी तथा माता माणिकेश्वरी देवी का निवास है।

मावली परघाव

बस्तर दशहरे में मावली परघाव का सबसे अधिक आकर्षण दिखाई पड़ता है। मावली परघाव का दृश्य आज भी उतना ही बड़ा भव्य होता है, जितना पुरातन काल में होता आया है, वह चाहे दंतेवाड़ा से जगदलपुर पर्व में सम्मिलित होने के अवसर पर, विदाई का अवसर हो या फिर जगदलपुर नगर सीमा में आने के बाद परघाव अर्थात् स्वागत का हो या पुनः दशहरे के समापन की अंतिम कड़ी के रूप में मावली देवी की विदाई और मावली देवी का दंतेवाड़ा पहुँचने पर स्वागत का अवसर हो। आज भी दशहरे के समस्त कार्यक्रमों में 'मावली परघाव' का आकर्षण कुछ ज्यादा ही परिलक्षित होता है। 'मावली' दंतेश्वरी देवी का ही एक रूप है जो कि संस्कृत के 'मौली' शब्द का अपभ्रंश मालूम पड़ता है, जिसका अर्थ मूल, शीर्षस्थ, मौलिक होता है। मावली देवी को माँ दंतेश्वरी का ही प्रतिरूप माना जाता है। दंतेवाड़ा से दंतेश्वरी की डोली जगदलपुर के लिए प्रस्थान करती है, तब उसका प्रतिरूप मावली माता के रूप में होता है। मावली डोली के साथ माँ दंतेश्वरी का छत्र स्थापित रहता है। उनकी पालकी जगदलपुर के दंतेश्वरी मंदिर में आतिथ्य स्वीकार करती है और सम्मानपूर्वक उत्सव के समापन के पूर्व परंपरानुसार विदा लेती है।

भीतर रैनी-बाहर रैनी

विजयादशमी तथा आश्विन शुक्ल पक्ष एकादशी की तिथि को क्रमशः 'भीतर रैनी तथा बाहर रैनी' के नाम से विजय रथ का परिचालन किया जाता है। इन दो दिनों तक चलने वाले रथ को 'विजय रथ'

कहा जाता है। भीतर रैनी का रथ पूर्ववत् फूल रथ की भाँति ही नगर के भीतर परिचालित किया जाता है। अंतिम दो दिन आठ पहियों के रथ परिचालन में किलेपाल के तीस परगनों के ग्रामीण ही रथ खींचते हैं। रियासत काल में बस्तर महाराजा के द्वारा माड़िया जनजाति के ग्रामीणों को ताकतवर और मेहनती माना जाता था, जिसके कारण महाराजा ने इन्हें अंतिम दो दिनों में चलने वाले आठ पहियों वाले विजय रथ खींचने की व्यवस्था दी थी। एक लोक मान्यता के अनुसार आठ पहियों के विशालकाय विजय रथ में अंचल और अंचल के बाहर से आए समस्त देवी-देवता सवार होते हैं और देवी-देवताओं के सवार होने से यह रथ भारी हो जाता है। अतः इसे सिर्फ किलेपाल के माड़िया जनजाति के सैकड़ों ग्रामीण ही खींच सकते हैं। यह परंपरा लगभग पाँच सौ वर्षों से आज भी चली आ रही है। भीतर रैनी की रथ परिक्रमा पूर्ण होने के बाद देर रात रथ चोरी करने की परंपरा का निर्वहन किया जाता है। राजमहल के सामने से विशालकाय रथ को

सैकड़ों आदिवासी हाथों से खींचते हुए नगर के बाहर कुम्हड़ाकोट नामक स्थान पर ले जाकर रथ को छोड़ देते हैं। कभी कुम्हड़ाकोट का वह स्थान सघन जंगल हुआ करता था जहाँ रथ चोरी करके जंगलों के बीच छुपा दिया जाता था।

बस्तर के आदिवासियों में नई फसल ग्रहण करने के पूर्व, प्रकृति और देवी-देवताओं को कृतज्ञता जाहिर करने तथा पूजा-अर्चना की एक परंपरा है। इसे 'नवाखाई' कहते हैं। फसल जब पक जाती है तो सबसे पहले अपने इष्ट देवी-देवताओं को समर्पित करते हैं और उसके बाद ही ग्रहण करते हैं। दूसरे दिन अर्थात् बाहर रैनी के दिन राजपरिवार तथा जन सामान्य कुम्हड़ाकोट पहुँचते हैं और नवाखाई की रस्म अदा करते हैं। इस दिन नए अन्न को खीर के रूप में पकाकर देवी-देवताओं को अर्पित किया जाता है। इस दिन राजपरिवार तथा अन्य जनप्रतिनिधियों के साथ-साथ जनसामान्य भी नया अन्न ग्रहण करता है। इस नवाखाई के बाद दंतेश्वरी माँई के छत्र को रथारूढ़ करके पुनः नगर की परिक्रमा करते हुए विशालकाय रथ को राजमहल के सामने लाया जाता है।

मुरिया दरबार

आश्विन 12वीं तिथि को दोपहर मुरिया दरबार का आयोजन किया जाता है, जिसमें रियासत काल में राजा और प्रजा के बीच विचारों का आदान-प्रदान हुआ करता था। इस दरबार में समस्याओं के निराकरण के लिए खुली चर्चा होती थी। इस दरबार में आम व्यक्ति भी किसी नौकरशाह के विरुद्ध शिकायतें पेश कर सकता था। मुरिया दरबार का सूत्रपात् 1876 में पहली बार हुआ था। इस मुरिया दरबार में सिरोंचा के डिप्टी कमिश्नर मेकजॉर्ज ने राजा और उनके अधिकारियों को संबोधित किया था। बस्तर में बसने वाले जाति और जनजातीय परिवारों यथा—हल्बा, भतरा, धुरवा, गदबा, दोरला, गोंड, मुरिया, राजा मुरिया, घोटुल मुरिया, झोरिया मुरिया आदि अन्यान्य जाति की पहचान के लिए पूर्व में 'मुरिया' शब्द ही प्रयोग में लाया जाता रहा है। 1931 के बाद से जातीय और जनजातीय परिवारों की गणना पृथक् से करने के बाद इनका उनके जातिगत शब्दों से उल्लेख किया गया। मुरिया दरबार, आदिवासी शब्द के अर्थ में आज भी प्रचलन में है। शताब्दी वर्ष पूर्व दी गई यह व्यवस्था आंशिक रूप से आज भी कायम है। आज इस दरबार में आम जनता की शिकायत सुनने के लिए जनप्रतिनिधि एवं सारे विभागों के अधिकारी उपस्थित रहते हैं।

देवी-देवताओं की विदाई

दशहरे के संपन्न होने के बाद दशहरे में आमंत्रित देवी-देवताओं को विदाई दी जाती है। दशहरा पर्व में राज्य तथा राज्य से बाहर से जो भी देवी-देवता आमंत्रित होते हैं, कुटुंब जात्र विधान के तहत शिष्टाचार मूलक कार्यक्रम आयोजित करते हुए उनकी ससम्मान विदाई की जाती है। देव-धामी के सम्मान में विधिवत् पूजा-आराधना के बाद बलि दी जाती है। यह आयोजन गंगामुंडा में आयोजित किया जाता है जहाँ देवी-देवताओं का एक सम्मेलन स्थल-सा प्रतीत होता है। कुटुंब जात्र में ग्राम देवी-देवताओं के अलावा प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष, ज्ञात-अज्ञात जितने भी देवी-देवता शामिल हुए, उन्हें ससम्मान विधिवत् पूजा-अर्चना और शक्ति के अनुसार बलि दी जाती है। आमंत्रित देवी-देवताओं को एक जगह कुटुंब जात्र आयोजित करके एकत्र किया जाता है। पर्व के दौरान गलतियों के लिए क्षमा-याचना भी की जाती है और राज्य के सुख-समृद्धि की कामना की जाती है। पुनः आभार ज्ञापित करते हुए सार्वजनिक रूप से बलि देकर देवी-देवताओं की ससम्मान विदाई की जाती है। इस क्रम में दूसरे दिन दंतेवाड़ा से आई मावली माँई की डोली तथा दंतेश्वरी देवी के छत्र को भी सम्मान पूर्वक विदाई दी जाती है।

बस्तर दशहरा कई मायनों में बहुआयामी है। आज के बदलते परिवेश में भी आम जनता को अपनी ओर आकर्षित करता आ रहा है। वास्तव में आज का दशहरा तत्कालीन मूल दशहरे का एक अभिनय मात्र-सा लगता है। ग्रामीणों का मानना है कि सेवा करने की जिम्मेदारी रियासत काल से उन्हें सौंपी गई है और उन लोगों पर दंतेश्वरी माँई की कृपा बनी रहती है, यही कारण है कि प्रतिवर्ष वे अपने खर्च पर शहर पहुँचकर परंपरा का निर्वहन कर रहे हैं। रियासत काल में दशहरा किस तरह होता था, पूछने पर उन बुजुर्गों की आँखों में एक चमक-सी आ जाती है और अतीत में डूबते हुए उनकी आँखें डबडबा जाती हैं। पूर्व में नवाखानी के बाद राजा मान-सम्मान किया करता था, वर्तमान में सिर्फ औपचारिकताएँ ही रह गई हैं।

वैद्यनाथ झा

जन्म : 23 अगस्त, 1949, वाराणसी

सेवानिवृत्त शिक्षक। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, पंजाबी, मैथिली कथाओं का अनुवाद प्रकाशित। एक बाल कथा-संग्रह हिंदी और एक बाल कथा-संग्रह मैथिली में प्रकाशित।

संपर्क : क्यू-36, फेज-2, निकट प्रकाश पुरी आश्रम, न्यू पालम विहार, गुरुग्राम-122017 (हरियाणा)

दूरभाष : 9582221968

त्रिलोचन की कविता : आत्मगाथा से आगे...

हिंदी कविता के छायावादोत्तर काल में त्रिलोचन का उदय एक विलक्षण घटना है। 1945 में 28 वर्ष की आयु में हिंदी को अपना पहला काव्य-संग्रह 'धरती' देने के बावजूद तत्कालीन कवियों व आलोचकों ने उनकी कविताओं को कविता मानने से इनकार कर दिया था। वे उनकी कविताओं पर हँसते थे। त्रिलोचन की कविताओं की उपेक्षा 1987 तक चली, लगभग 42 वर्षों तक।

इस लंबे मौन को दो प्रमुख घटनाओं ने तोड़ा। पहली, 1980 में उन्हें उनके काव्य-संग्रह 'ताप के ताए हुए दिन' पर साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला और दूसरा 1980 से 1987 के बीच एक के बाद एक उनके नौ काव्य-संग्रह आए। पुरस्कार के बाद 1981 में डॉ. केदार नाथ सिंह ने उन पर एक आलेख लिखा तो 1987 में अब तक मौन साधे उनके दो प्रिय मित्रों डॉ. नामवर सिंह और डॉ. राम विलास शर्मा ने कई आलेख लिखे। काव्य-संग्रहों के प्रकाशन और दिग्गज आलोचकों के लेखों ने कोने में डाल दिए गए त्रिलोचन के काव्यगत महत्त्व को स्वीकार कर कविता के संसार में स्थापित किया। लोगों ने उनकी अद्भुत प्रगतिशीलता, शिल्प, भाषिक चेतना, किसानों-मजदूरों, शोषितों, वंचितों, दलितों की व्यथा-कथा कहने की प्रतिभा को पहचाना।

आत्मगाथा/आत्मप्रसंग क्यों?

त्रिलोचन की अधिकांश कविताओं में आत्मप्रसंग भरे पड़े हैं। प्रायः सर्वत्र 'मैं', 'मेरा', 'मुझे', 'त्रिलोचन' सर्वनामों की भरमार है। आखिर क्यों? अपनी गरीबी, फटेहाली, उपेक्षा, अपमान का बार-बार जिक्र क्यों? क्या कविता इन्हीं विवरणों का 'प्लेटफॉर्म' है? उनकी इन कविताओं में उनकी बदहाली का ही तो जिक्र है—

चीर भरा पाजामा, लट-लटकर गलने से
छेदों वाला कुर्ता, रूखे बाल उपेक्षित
दाढ़ी-मूँछ सफाई, कुछ भी नहीं अपेक्षित।

(उस जनपद का कवि हूँ)

भीख माँगते उसी त्रिलोचन को देखा कल
जिसको समझे था है तो है वह फौलादी।

(वही)

कर्ता तूने जब मुझको दुनिया में भेजा
देखा-भाला खूब और जी में क्या जाने
क्या आई ममता के स्वर में बोला, "ले जा
यह दुःख की माला है, ये आँसू के दाने"

(वही)

घोर विपत्ति के क्षणों में भी मानवतापरक मूल्यों पर उनकी अगाध निष्ठा थी। अपने प्रिय विष्णु चंद्र शर्मा को वे कहते हैं—

मेरे दुःख की आँच देखकर भी तुम भागे नहीं विष्णु....
... तुम्हारे भीतर शुद्ध भाव थे जागे
कवि का आदर करें किंतु मानव को त्यागे
तुम हो उनमें नहीं।

(फूल नाम है एक)

तो क्या निजी बदहाली, रोना-धोना, हीनता-बोध ही कविता का 'डोमेन' है? क्या त्रिलोचन ऐसे अकेले कवि हैं जिन्होंने सार्वनामिक पदों का धुआँधार प्रयोग किया है? क्या यही उनकी ऐतिहासिक, साहित्यिक उपेक्षा का कारण है? वैसे मंगलेश डबराल को दिए साक्षात्कार में उन्होंने कहा था कि 'त्रिलोचन' शब्द का प्रयोग मैंने अन्य पुरुष के रूप में किया है।

आत्मपरक सर्वनाम पदों का व्यापक प्रयोग केवल त्रिलोचन की कविताओं में ही नहीं मिलता, भक्तिकाल के कवियों सूर, तुलसी, अष्टछाप के कवियों, मीराबाई आदि की रचनाओं में भी प्रायः मिलता है। सबसे अधिक दीनता तुलसी की रचनाओं में मिलती है, वही तुलसी जो त्रिलोचन के भाषा व काव्य गुरु थे। उनके समकालीनों—अज्ञेय, बच्चन, निराला ने भी इन सार्वनामिक पदों का प्रयोग किया है, पर उनके प्रयोग के निहितार्थ त्रिलोचन के मंतव्य से सर्वथा अलग हैं।

भक्त कवियों की आत्मपरक रचनाएँ एकदम अलग भावभूमि पर आधारित हैं। उनकी आत्मगाथाओं में आध्यात्मिक पृष्ठभूमि है, समर्पण है, निरहंकारिता है, सरलता है, सहजता है। यहाँ आत्मबल, आत्मविश्वास, निजता जैसे भाव नहीं हैं। निजता का संदर्भ आध्यात्मिक उत्थान के परिप्रेक्ष्य में है। यथार्थ नहीं, चमत्कार की आशा है, रिरियाहट है।

अज्ञेय, बच्चन आदि के आत्मपरक शब्दों/प्रसंगों में वे शब्द निजता के दायरे से बाहर नहीं आ पाए। वे एक सीमा तक ही सीमित रहे। आत्मपरक कविताओं के स्वरूप पर एक विचार रखते हुए डॉ. गोविंद प्रसाद ने अपने आलेख 'सरलता का आकाश' में लिखा है—"अज्ञेय का अहं बोध निजता की उस चरम भूमि पर पहुँच जाता है जहाँ 'ममेतर' का मर्म केवल 'मम' की परिधि में सिमटकर रह जाता है। कारण कि अज्ञेय का अहं अथवा 'मैं' अंततः समाज-निरपेक्ष अधिक लगता है। बच्चन के 'मैं' में पीड़ा रूमानियत के औसत स्तर को ही छू पाती है। वह आपबीती अधिक है जिसमें सहानुभूति ही अधिक उपजती है। बच्चन अपनी पीड़ा में रस लेने लगते हैं। इसी से वह पीड़ा बेमानी व छद्म लगने लगती है।"

नागार्जुन के आत्मपरकता की बात की जाए तो वे इस विवाद में कहीं उलझते दिखाई नहीं देते। वे खुलेपन को पसंद करते हैं। उनके यहाँ निजता जैसी कोई चीज नहीं है। समाज/समूह प्रेमी नागार्जुन व्यापक समूह के सामने ही खुलते हैं। वे तो हाथ उठाकर घोषणा करते हैं—"प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव है मेरे कवि का।"

त्रिलोचन की कविताएँ तो 'मैं', 'मेरा' जैसे सार्वनामिक संबोधनों से अटी पड़ी हैं। इतनी आत्मपरक कविताएँ तो हिंदी साहित्य में किसी कवि ने नहीं लिखी होंगी। इसके पीछे मूल कारण उनके निजी जीवन की अनुभूतियाँ हैं। वे एक अत्यंत विपन्न परिवार से थे। संघर्ष आजीवन उनका चिरसंगी रहा। अभाव, दीनता, पारिवारिक-सामाजिक विषमताएँ ताउम्र उनके साथ रहीं। अब देखिए—इंटर का विद्यार्थी त्रिलोचन (तब वासुदेव सिंह) पढ़ाई का खर्च निकालने के लिए काशी की सड़कों पर रिक्शा चलाता था। किसान, मजदूर, दलित, शोषित उनके संगी थे। वे उन लोगों की असहायता, दरिद्रता के साक्षी थे। उनके कवि-व्यक्तित्व के संगठन में इन्हीं अनुभवों का संघटन था। उन्होंने इन अनुभवों को कविता में पिरोया है तो इस सजगता के साथ कि वे अनुभव निजी न रहकर कविता के साँचों को मानते हुए हजारों-लाखों समानधर्माओं की आवाज बन जाएँ। वे ठसक के साथ लिखते हैं—

कवि है नहीं त्रिलोचन अपना सुख-दुःख गाता
रोता है वह केवल अपना सुख-दुःख गाना
और इसी से दुनिया में कवि कहलाना
देखा नहीं गया।

(उस जनपद का कवि हूँ)

त्रिलोचन के व्यक्तित्व व लेखन में कुछ तो ऐसा था जो उनके अवसाद, उपेक्षा, अपमान से भरे जीवनानुभव को कुशलता से कविता के ढाँचे में 'मोल्ड' करने के बाद भी बोर नहीं करता, निजी अनुभव को समूह का अनुभव मानने की अपील करता है। उनमें याचना की बू नहीं आती। कष्ट सहना, चुपचाप सहना, अपमान पी जाना, फिर भी हाथ न फैलाना उनकी फितरत में था।

वे मृत्यु-शय्या पर पड़े थे। मित्रों ने इलाज के लिए शासन से आर्थिक सहायता के लिए आवेदन करने के लिए कहा। मित्रों ने सारी औपचारिकताएँ पूरी कर दी थीं, बस उन्हें हस्ताक्षर करने थे। त्रिलोचन ने 'अब आखिरी वक्त क्या खाक मुसलमाँ होंगे' के भाव से साफ मना कर दिया।

तुमको अपना कहूँ किंतु कहने का साहस
मेरे मन में नहीं बचा है मेरे गंदे
कपड़ों से तुम्हें नफरत है। तो फिर बंदे
बड़े बनो तुम मुझको अपनी दुनिया में रस
मिलता है, तुम गाड़ी घोड़ों का सुख लूटो

(उस जनपद का कवि हूँ)

यह स्वाभिमान ही उन्हें अपराजेय बनाता है। वे प्रतिकूलता को चुनौती के रूप में लेते हैं, अपमान को कुनैन की तरह पी जाते हैं, उनकी कविता के शिल्प में निखार आता है। वे दुःख में भी गर्व करते हैं। उनकी इसी प्रवृत्ति को काव्यात्मक व्यंजना से जोड़कर डॉ. नामवर सिंह निपट निर्वैयक्तिकता में भी गहरी वैयक्तिकता कहकर प्रगतिशील कवियों की जमात में रखते हुए उन्हें सबसे विशिष्ट बताते हैं तो डॉ. राम विलास शर्मा लिखते हैं—

"भूख, उपवास, बेरोजगारी पर जैसी अनुभूति-तीव्रता त्रिलोचन की कविताओं में है वैसी अन्य प्रगतिशील कवियों में नहीं। लगभग वैसी अनुभूति जैसी तुलसी और निराला की आत्मपरक पंक्तियों में है। ऐसी कविताओं में व्यक्तिगत दुःख तो है, साथ ही नैतिक दृढ़ता से मंडित मानवीय गरिमा भी है।"

आश्चर्य होता है कि ये पंक्तियाँ लिखने में इन दोनों दिग्गजों को 42 वर्ष लग गए। इधर आलोचकों, कवियों की उपेक्षा, प्रगतिशील कवियों की लिस्ट से बेपरवाह त्रिलोचन छंदों, अंग्रेजी के सॉनेटों में तोड़-फोड़ करते रहे, नया गढ़ते रहे। सॉनेटों के तो वे बेताज बादशाह थे। उन्होंने शेक्सपीयर के सॉनेटों का भारतीयकरण कर दिया एकदम नए रूप में। उन्होंने सभी पाश्चात्य सॉनेट छंदों पर काम किया। उन्होंने इसे चौबीस मात्रिक छंदों में ढाला। इसे 'रोला छंद' कहा जाता है। वे ही हिंदी के एकमात्र ऐसे कवि हैं जो बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से लेकर इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करते हुए रचना कर्म को विराम देने तक सॉनेट के पथ पर ही दौड़ते रहे—

इधर त्रिलोचन सॉनेट के ही पथ पर दौड़ा
सॉनेट सॉनेट सॉनेट सॉनेट क्या कर डाला

(दिगंत)

'दिगंत' आदि पाँच काव्य-संग्रह सॉनेट में ही हैं। उनके सॉनेट शेक्सपीयर के सॉनेट से इस मायने में विशिष्ट हैं कि उन्होंने पूरे वाक्य को अपनाया। वाक्य एक चरण से दूसरे में फिसलते चलते हैं। जैसे एक-दूसरे का हाथ पकड़कर चल रहे हों।"

(त्रिलोचन संचयिता : ध्रुव शुक्ल)

बात वहीं आकर अटकती है कि आखिर त्रिलोचन जी ने इतनी आत्मपरक कविताएँ लिखने का जोखिम क्यों उठाया? वस्तुतः उन्होंने साहस का काम किया। उनका आत्म विगलित हो गया था। अपने आत्म का विस्तार अपने व्यापक परिवेश में रहने वाले किसान-मजदूर जैसे तबकों तक किया। उनकी आत्मगाथा अब उनकी गाथा न रहकर अपने समानधर्मा मानवों तक फैल गई थी, व्यष्टि समष्टि में रूपांतरित हो गई थी।

यह आश्चर्य का विषय तो है ही कि अंतस् में भट्ठी इतनी धधक रही हो और कविता के तेवर को जरा भी प्रभावित न करे। उनकी कविताओं में वह आक्रोश, उत्तेजना, उग्रता नहीं मिलती, न ही अलंकार या आडंबर मिलता है। वे मनोभावों और मनोवेगों का पिटारा खोल देते हैं—

आज मैं अकेला हूँ
अकेले रहा नहीं जाता

ओखी धार दिन की
अकेले बहा नहीं जाता

(धरती)

अपना बस क्या जीवन है दुनिया का सपना
जब तक आँखों में है, तब तक ज्योति बना है
अलग हुआ तो आँसू हैं या तिमिर घना है
बने ठीकरा तो भी मिट्टी को है तपना।

(दिगंत)

तन भूखा था, मन भूखा था / तुमने टेरा घोड़ा था
तेज तुम्हारा, तुम्हें ले उड़ा / मैं पैदल था।

इन आत्मपरक कविता सृजन के लिए डॉ. गोविंद प्रसाद त्रिलोचन की विरोधाभासी प्रकृति को भी जिम्मेदार मानते हैं। वे लिखते हैं—

"दीनता में अदीन बने रहने का भाव, दारुण अभाव में भी अपराजेय बने रहने का भाव, जनपदीयता में आधुनिक बने रहने का बोध, धरती पर रहकर आकाश की ऊँचाई का बोध, नीरवता में गतिमयता, अनात्म में आत्म, काव्य में गद्यात्मकता, शब्द पर आग्रह करते हुए मौन में अनाहत शब्द की गरिमा—सब कुछ में जैसे विरुद्धों का समंजन। ....वस्तुतः एक विरोधाभास है त्रिलोचन आपादमस्तक। —यही त्रिलोचन है, सब में अलगाया भी.... ।"

(सरलता का आकाश)

यही विरोधी तत्त्व उनकी कविता को माँजते हैं, कलम (शिल्प) को दृढ़ता देते हैं। वे विलक्षण व मिथकीय हो जाते हैं।

त्रिलोचन की कविता के केंद्रबिंदु में लोक हैं

त्रिलोचन अपने ग्रामीण परिवेश एवं लोक जीवन से गहरे जुड़े होने के कारण लोक-पीड़ा व लोक-असंतोष को आत्मकविता की शक्ल देते हैं। जीवनानुभव व लोक-संपृक्तता सृजन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उनकी कविता में आत्मगाथा नहीं, लोकगाथा है—नगई महरा है, उसके संघर्ष की विकरालता है, भोरई केवट, सुकनी बुढ़िया, रामचंद्र, यामा और चंपा है—वही चंपा जो काले-काले 'अच्छर' नहीं चीन्हती। लोक-पीड़ा से व्यथित कवि निर्भीक लिखता है—

लाशों की चर्चा थी, अथवा सन्नाटा था
राज्यपाल ने दावत दी थी, हा हा ही ही।

(अरघान, पृ. 17)

(यह कविता उन्होंने 1953 में प्रयाग में महाकुंभ की भगदड़ में मारे गए अनेक लोगों की घटना से व्यथित होकर लिखी थी)

जब कवि, कविता और लोकपक्ष की बात की जाती है तो इसका अर्थ होता है—लोक और प्रकृति की बातें। प्रकृति लोक-जीवन का अभिन्न अंग होती है। उसकी भाषा, मुहावरों, उक्तियों, संवाद में प्रकृति एक अपरिहार्य पक्ष होता है। त्रिलोचन और उनकी कविताएँ लोक और प्रकृति से नीर-क्षीर की तरह घुली-मिली हैं। वे कभी गाँव से बाहर गए मजदूरों की पत्नियों को पत्र लिखते हैं तो कभी अपने परिवेश की 'लाइव टोपीग्राफी' करते हैं जहाँ समुद्र, झील, झरने, पिकनिक स्पॉट, पहाड़ियाँ नहीं हैं बल्कि खेत-खलिहान, छीमी, घुघनी, गेहूँ, जौ, सरसों, जलकुंभी, पुरइन, पीपल, पाकड़ के पेड़ हैं; गुलाब, चंपा, चमेली, जूही, हरसिंगार, शिरीष नहीं, बल्कि बबूल और कटहल के जैसे उपेक्षित फूल हैं जो जरा भी सुंदर नहीं हैं। यही त्रिलोचन का सौंदर्यबोध है। असुंदर ही सुंदर, उपेक्षित ही अपेक्षित है।

फूल मुझे भाये बबूल तूली जैसे, राशि-राशि हँसते, मानो आनंद मनाते चेतन कण हों, हरित पीत वर्ण छवि।

दूब उन्हें बहुत प्रिय थी। कारण, वह उपेक्षित, पददलित, बिना किसी देखभाल के, कहीं भी उग जाती हैं।

दूब गर्मियों में देखा भूरी-भूरी थी।
लगा कि बस दो-चार दिनों के लिए और है

इसलिए वे कहते हैं
पृथ्वी से
दूब की कलाएँ लो

बढ़ो

बढ़ो।

(अरघान, पृ. 12)

उनकी कविताओं में शब्द भी ऐसे मिलेंगे जो किसी मानक शब्दकोश में नहीं मिलेंगे। मिलेंगे तो लोक-जीवन में व्यवहृत-खाँटी देशज शब्द जैसे पलिहर, कोहाड़, इनार, झापस, बकैंया, मड़ई आदि।

त्रिलोचन के लोकानुराग को देखना है तो बरवै छंद पर आधारित उनके 'अमोला' को पढ़ें। इस कविता में प्रयुक्त भाषा पूर्वी अवधी है। कवि के परिवेश व घर की भाषा भी पूर्वी अवधी है। इसी भाषा के शब्द, पदबंध, मुहावरे बोले जाते हैं। अमोला को पढ़ते हुए उस पृथ्वी को महसूस किया जा सकता है—

पिर्थी बिसरइ कबहुन आपन नाल
दिन बीतइ रितु बीतइ बीतइ साल

पत्नी की मृत्यु हो चुकी थी। उसकी कमी घर के कोने-कोने में महसूस कर वे विह्वल हो रहे थे। देखिए, निजी अनुभव कविता के ढाँचे में आकर कैसे व्यंजित होता है—

पएंड़ा पएंड़ा सबकइ आ अलमान
तबइ हमई तोहरेइ पएंड़ा कर ध्यान।
उठे चले बइठे ओलरे हर दाईं
तोहरिन सुधि हमरे आपस कुछु नाइ।

यही तो यथार्थ के रंग में सराबोर लोकपक्ष है जहाँ विरह में कवि झील के किनारे, पेड़ तले, किसी सहरा में दाढ़ी-बाल बढ़ाए गीत नहीं गाता बल्कि अपने सारे काम सहजता से करते हुए विरहानुभूति को सहजता से लोकभाषा में व्याकरण, छंद, शिल्प के अनुशासन से बेपरवाह रह व्यक्त करता है। इसी बिंदु पर त्रिलोचन अपने समकालीनों से अलग खड़े दिखाई देते हैं।

एक वह समय था जब त्रिलोचन की कविताओं को कोई तवज्जो नहीं दी जाती थी और आज एक समय वह है जब प्रगतिशील कविताओं और कवियों के इतिहास की चर्चा त्रिलोचन के बिना अधूरी मानी जाती है।

पुस्तकीय संस्कृति दशा एवं दिशा

डॉ. पराक्रम सिंह

जन्म : 2 जून, 1985, जिला आजमगढ़, उत्तर प्रदेश।

शिक्षा : एम.फिल्, पीएच.डी. (हिंदी), आचार्य (संस्कृत साहित्य)

प्रकाशन : 50 से अधिक देशों की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में शोधालेख, समीक्षाएँ प्रकाशित। अक्षरवार्ता, शब्दार्थ शोध पत्रिका में सह-संपादक।

संप्रति : उच्च शिक्षा, मध्य प्रदेश शासन के द्वारा हिंदी विषय में (अतिथि विद्वान्) के पद पर शासकीय महाविद्यालय में कार्यरत।

संपर्क : 9039121891, 9918558223

ई-मेल : merasafar.parakram@gmail.com

संस्कृति संस्कार की अगली कड़ी के रूप में होती है। समाज में जीवन जीने की कला में मनुष्य के लिए संस्कृति एक अभिन्न हिस्सा होता है। प्रकृति में भाषा, बोली के आधार पर सभी जीवधारियों में मनुष्य सबसे सर्वश्रेष्ठ रहा है। जन्म के संस्कार से लेकर संस्कृति और समाज की इस कड़ी में रीति-रिवाज, खान-पान, व्रत, पर्व, उत्सव, मनोरंजन, रहन-सहन, शिक्षा आदि जैसी संस्कृति सामाजिक पृष्ठभूमि के द्वारा ही कोई समाज, राष्ट्र सर्वोच्च शिखर को छूता है। संस्कृति के द्वारा किसी समाज, जाति, व्यक्ति के कला-कौशल एवं बौद्धिक विकास का अनुमान लगाते हैं। आज जब संपूर्ण विश्व 'जोड़ जगत जाल' (डब्ल्यू.डब्ल्यू. डब्ल्यू.) के माध्यम से अपने आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षणिक, वैचारिक आदि के द्वारा 'विश्वग्राम' के सूत्र वाक्य को साकार करने का प्रयास कर रहा है। तेजी से बढ़ते इस उपभोक्तावादी संस्कृति में सभी किसी न किसी रूप में प्रतिस्पर्धा का सामना करते हुए दिखाई दे रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप कई सुखद तो कुछ संस्कृति और सभ्यता के लिए भयावह परिणाम जाने-अनजाने में आने लगा है। कम समय में अधिक पाने की लालसा एवं आधुनिकीकरण के नाम पर अंधी दौड़ लगाने से मनुष्य के नैतिक, सामाजिक, मानसिक, शारीरिक एवं संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ा है। जीवन की इस दौड़ में शामिल मनुष्य ने बुद्धि एवं प्रयोग के द्वारा पृथ्वी से सूर्य, चंद्र, ग्रह, भूगर्भ के रहस्य आदि की खोज कर जीवन को सरल बनाया। सर्वप्रथम उँगली से मिट्टी पर जब उसने कुछ खींचा होगा तो शायद उसके भी अपने कुछ अर्थ रहे हों जो धीरे-धीरे परिवार, समाज से होकर पहचान (लिपि) बन गई होगी। पुरानी सभ्यताओं के मिले कुछ चिह्न, जिन्हें आज तक नहीं पढ़ा जा सका है, वह धातुपत्र, भोजपत्र, शिलालेख, कागज एवं वर्तमान में सीधे-सीधे स्क्रीन पर टंकण करने और पढ़ने की संस्कृति विकास का सोपान कहा जा रहा है।

भारत प्राचीन काल से ही शिक्षा एवं संस्कृति प्रधान देश रहा है। गुरुकुल की शिक्षा से लेकर वर्तमान शिक्षा व्यवस्था तक निरंतर लेखन का कार्य किया जाता रहा है। लेखन को प्रकाशन तथा उसे जन समुदाय तक सर्वसुलभ कराना सदैव ही चुनौतीपूर्ण रहा। प्रकाशक एवं पाठक के बीच निर्मित पुस्तकीय संस्कृति परंपरा न बनकर कुछ विशेष वर्ग तक सीमित होती गई। खास प्रयोजन पुस्तक संस्कृति के इस प्रभाव के बारे में देखें तो हमें 'पुस्तक जल्हणहत्थ दिए, चल गज्जन नृप काज' से जीवन में पुस्तकों के महत्त्व का अनुमान तो लगाते हैं। नालंदा (बिहार) की लाइब्रेरी तत्कालीन समाज के पुस्तकीय संस्कृति प्रेम का अद्भुत उदाहरण है।

आज जब देश विकासशील से विकसित राष्ट्र के सोपान को तय करने के कगार पर है, जिसमें शामिल हैं करीब 135 करोड़ की आबादी में लगभग चालीस प्रतिशत युवा और इसके अलावा एक बहुत साक्षर वर्ग होने के बावजूद केरल, मराठी और बाँग्ला राज्य के पाठक वर्ग को छोड़कर जिनमें आज भी अवसर विशेष के साथ ही सहज ही पुस्तक का पठन-पाठन देखने को मिलता है जबकि हिंदीभाषी राज्यों में पुस्तकों के प्रति विगत कुछ दशकों में पठन-पाठन का अभाव उभकर सामने आया। मुख्य कारण के रूप में आर्थिक समस्या, समयाभाव, टेलीविजन, फिल्मों एवं कंप्यूटर, इंटरनेट से प्रभावित होना कहा जा सकता है। वैचारिक स्थापनाओं से लेकर संस्कृति, समाज की सच्चाई, गुण-धर्म को, चाहे वह बर्लिन के तानाशाह द्वारा लाखों की संख्या में पुस्तकों को इकट्ठा कर जलाने, जिससे संस्कृति को नष्ट किया जा सके, जिसके उपलक्ष्य में वर्ष में एक दिन इकट्ठा होकर बच्चों-परिवार के साथ पुस्तकों का पठन-पाठन और घर में स्वयं को जीवंत रखने के लिए पुस्तकों को संस्कार से संस्कृति तक ले जाने के प्रयास से वैश्विक समाज के संबंधों को दर्ज कराता रहा। इन सब के होते हुए भी लाखों पुस्तकों, उपन्यासों की प्रतियाँ छपती-बिकती रहीं, जब 'चंद्रकांता' पढ़ने के लिए पुस्तक पाठकों ने हिंदी भाषा को सीखा। आज पुस्तक और पाठकीय रुचियों में कमी के कारण सीमित प्रतियों में किताब का संस्करण प्रकाशकीय एवं लेखकीय जन-जीवन की समस्या के रूप में देखा जाने लगा है।

जब पुस्तकीय संस्कृति की बात चल रही है तो मैं जहाँ जीवन में कर्म, चिंतन, मनीषा की उज्ज्वल परंपरा, आधुनिक समय में रहकर प्राचीन संस्कृति की भूमिका के समवाहक का पर्याय रह चुके निर्मल वर्मा यूरोप प्रवास के समय वहाँ के लोगों में पुस्तकों के प्रति प्रेम एवं भारतीय पुस्तक संस्कृति के बीच के अंतर को स्पष्ट करते हुए आइसलैंड के बारे में कहते हैं—इस देश में शराब के बाद सबसे ज्यादा माँग पुस्तकों की है..... साहित्य के प्रति यह लगाव केवल बुद्धिजीवियों तक ही सीमित नहीं है, एक इंजीनियर से लेकर मछली पकड़ने वाले बूढ़े तक अपने देश के हर लेखक और कवि के भूत और

"गुरुकुल की शिक्षा से लेकर वर्तमान शिक्षा व्यवस्था तक निरंतर लेखन का कार्य किया जाता रहा है। लेखन को प्रकाशन तथा उसे जन समुदाय तक सर्वसुलभ कराना सदैव ही चुनौतीपूर्ण रहा। प्रकाशक एवं पाठक के बीच निर्मित पुस्तकीय संस्कृति परंपरा न बनकर कुछ विशेष वर्ग तक सीमित होती गई।"

भविष्य का निर्माण करना रहा। साहित्य अकादेमी, भारतीय ज्ञानपीठ, चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, भारतीय भाषा परिषद् आदि अकादमियों, संस्थाओं को प्रकाशन के लिए सरकारी अनुदान प्रदान कर भारतीय एवं विदेशी भाषाओं के साहित्य का अनुवाद एवं प्रसिद्ध साहित्य, रचनाकार की रचनाओं को अधिक से अधिक लोगों तक जोड़ने के लिए कम मूल्य निर्धारण। वर्ष की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों को साहित्य अकादेमी, भारतीय ज्ञानपीठ, भारतीय भाषा परिषद् आदि अनेक संस्थाओं, सरकार द्वारा पुरस्कृत करने से पुस्तकों के लेखन एवं पठन में वृद्धि होती है। नेशनल बुक ट्रस्ट, गीता प्रेस, सर्वोदय, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली जैसे प्रकाशकों के माध्यम

भविष्य में कुछ इस तरह दिलचस्पी है, जितनी हमारे देश के युवक-युवतियों की फिल्मी सितारों की जिंदगी में..... खाना-पीना समाप्त कर लेने के उपरांत गृहस्वामी बड़े आदर से अतिथि को अपने पुस्तकालय में ले जाता था और फिर विनम्र भाव से पूछता था, “आप कौन-सा गाना सुनना पसंद करेंगे?”..... किंतु असली विस्मय तो उस झोंपड़ी में पाँव रखने के बाद हुआ। एक क्षण के लिए भ्रम हुआ मानो हम किसी ‘मेट्रोपॉलिटन’ नगर के एक अत्यंत सुसंस्कृत ‘बुद्धिजीवी’ के घर में आ पहुँचे हैं। पहला कमरा पुस्तकों से ठसाठस भरा था। बैठक में कुछ और पुस्तकें थीं..... स्मरण रहे, यह एक बहुत ही साधारण किसान का घर था..... यह जानकर कि मैं भारतीय हूँ, उनकी आँखें सहसा चमक उठीं। कॉफी का प्याला मेज पर ही छोड़कर वह एक छोटी-सी लड़की की तरह भागती हुई पहले अपने कमरे में गई और अपने संग एक बहुत पुरानी किताब, जिसकी जिल्द बिलकुल जर्द और भुरभुरी हो चुकी थी, ले आई। “यह मेरी एक प्रिय पुस्तक है। कभी एक भारतीय को आँखों से देखने का अवसर मिलेगा, मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था।” पुस्तक आइसलैंडी भाषा में थी, ‘श्रद्धांजलि’ का अनुवाद।.... किसी भी समय वह किसी वर्ग-विशेष की संपत्ति नहीं रहा और सबसे बड़ी बात यह कि किताबों की आलमारी और आधुनिक चित्र महज घर के फर्नीचर का अंग न होकर अपने स्वतंत्र ‘स्वांतः सुखाय’ वस्तुएँ भी हो सकती हैं, किसान के घर में उतनी ही अनिवार्य जितनी एक शहरी ‘बुद्धिजीवी’ के ‘फ्लैट’ में।

देश की स्वतंत्रता के बाद शिक्षा नीति के संदर्भ में मुदालियन आयोग ने देश के शहरी एवं ग्रामीण दोनों ही स्तर पर लाइब्रेरी खोलने का सुझाव दिया, जिसके पीछे मुख्य उद्देश्य था अधिक से अधिक लोगों को शिक्षित एवं पठन-पाठन में रुचि पैदा किया जाना। विश्वविद्यालय, कॉलेज, छोटे-छोटे शिक्षण संस्थानों में अनिवार्य रूप से लाइब्रेरी और पाठक, बच्चों के अनुरूप ही सामग्री उपलब्ध कराने जैसे कार्य से समाज, संस्कृति, ज्ञान, जिज्ञासा के आधार पर उज्ज्वल

से सस्ती एवं अच्छी पुस्तकों से पुस्तकीय संस्कृति को समृद्धि मिल रही है।

प्रकाशकों द्वारा पाठकों को सदस्यता देकर वर्ष में उपहारस्वरूप पुस्तक भेजना, घर बैठे सदस्यता के आधार पर पुस्तक मँगाकर पढ़ने की व्यवस्था, पत्रिकाओं में नई पुस्तकों की समीक्षा (जानकारी) प्रदान करना। जनसत्ता, हिंदू, दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिंदुस्तान, पत्रिका जैसे समाचार-पत्रों के सप्ताह में एक दिन किसी लेखक की रचना का अंश, समीक्षा आदि के प्रकाशन से पुस्तक पढ़ने की जिज्ञासा उत्पन्न करता है। पाठक मंच, पाठक संवाद जैसे मंच देश में पुस्तकों के पठन-पाठन को बढ़ावा देने का कार्य कर रहे हैं। रेलवे एवं मेट्रो स्टेशन, बस स्टैंड, एयरपोर्ट, स्मारक जैसे सार्वजनिक स्थानों पर एच.व्हील, ऐन्ग्रो जैसे पुस्तक विक्रय केंद्रों पर हर उम्र वर्ग को ध्यान में रखते हुए पुस्तक उपलब्धता देखने को मिलती है। पुस्तकों को अधिक से अधिक लोगों के समक्ष प्रस्तुत करने के उद्देश्य से नगरों, महानगरों में पुस्तक मेले, प्रदर्शनी का आयोजन और अधिक छूट पर पुस्तकों के बेचने से पाठकीय रुचि जगाने का प्रयास भी देखने को मिल रहा है। इसके साथ ही मोबाइल पुस्तकालयों द्वारा चुनिंदा पुस्तकों को कॉलेज, स्कूल, मंदिर, न्यायालय, सार्वजनिक स्थानों पर खड़ा कर पाठकों की रुचि एवं जिज्ञासा को ज्ञात किया जा रहा है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि वैश्वीकरण के इस दौर में पुस्तक संस्कृति को संरक्षित करने का प्रयास आर्थिक, सामाजिक एवं वैचारिक व सांस्कृतिक दृष्टि से किया जा रहा है। समय अभाव एवं इंटरनेट के अधिक प्रयोग से, विश्वभर में इस विचार एवं संस्कृति की ज्ञानगंगा की सभ्यता के इतिहास से वर्तमान एवं भविष्य का दर्शन होता रहा है। विश्व मानवता उत्तराधिकार के इस पुस्तकीय जीवन में जब हम खोजते हुए पाते हैं– अनंत समय, बीते हुए सत्य के साथ क्रोध, भय, ईर्ष्या, दुश्मनों के जासूस, गूँगे प्यार में समाई हुई रहस्यमयी संस्कृति।

इसी शहर में लाइब्रेरी हुआ करती थी....

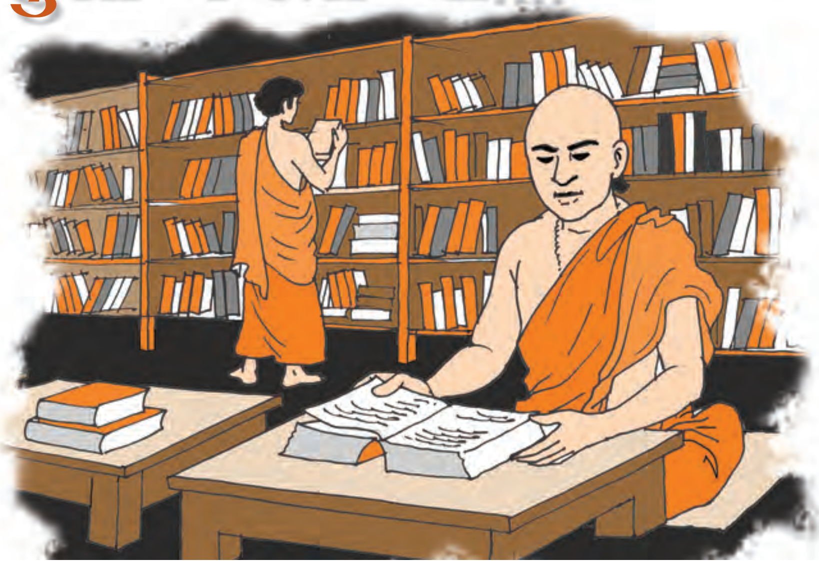

कौशलेंद्र प्रपन्न

कृति : 'बच्चे भाषा और शिक्षा', 'कहने का कौशल' किताब के लेखक। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आलेख प्रकाशित। चार शैक्षिक किताबों का संपादन।

संप्रति : शिक्षक-प्रशिक्षक एवं भाषाकर्मी के तौर पर देशभर में सरकारी एवं निजी शिक्षा-शिक्षण संस्थानों में भाषा, बच्चे एवं शिक्षा शिक्षण से संबद्ध।

संपर्क : डी 11/25 सेकेंड फ्लोर,
रोहिणी सेक्टर 8,
दिल्ली-110085

दूरभाष : 9891807914

ब्लॉग : http://bolotosahi.blogspot.in/

नालंदा, तक्षशिला से आगे निकलकर आज पुस्तकालय पेपाइरस, भोजपत्र, मिट्टी की पट्टियों, शिलालेखों को पीछे छोड़कर डिजिटल फॉर्म में बदल चुके हैं। जैसे-जैसे कंटेंट के स्वरूप में तब्दीली आएगी वैसे-वैसे कंटेनर के स्वरूप भी बदलेंगे। किताबों से आगे निकलकर अब हम कंटेंट को माइक्रो फिल्म, ऑनलाइन पढ़ने-देखने लगे हैं। इसी तरह से हमारी आधुनिक लाइब्रेरी भी खुद को तैयार कर रही है। केवल पुस्तक जारी करने, प्राप्त करने की बही से काम नहीं चलेगा। उन्हें भी कैट्लैगिंग आदि को तकनीकी फॉर्म में बदलना होगा। ऑन लाइन किताबों की बुकिंग तो कई लाइब्रेरी शुरू कर चुकी हैं। पाठक अपनी रुचि की किताबों को पोस्ट, मेल आदि के मार्फत प्राप्त करने लगे हैं। इस सेवा के लिए उन्हें सालाना सदस्यता शुल्क देना होता है। आने वाले समय में पुस्तकालयों के स्वरूप में और भी बदलाव होंगे। मुद्रित किताबें एकदम से गायब तो नहीं होंगी लेकिन एक समानांतर ऑनलाइन किताबें पुस्तकालयों में देखने को मिलेंगी। नालंदा विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी कहते हैं, छह माह तक जलती रही थी। दूसरे शब्दों में कहें तो यह ज्ञान-मीमांसा एवं ज्ञान-सृजन की रफ्तार को कम करने की मानवीय विकास के इतिहास में पहली बड़ी घटना के तौर पर दर्ज की जानी चाहिए। किसी भी समाज के बौद्धिक विकास में स्थानीय शैक्षिक संस्थानों और उनके पुस्तकालयी योगदान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। लेकिन अफसोसनाक बात यही है कि समाज के विकास में पुस्तकालयों को समुचित स्थान नहीं मिल पाया है। आजादी के सत्तर साल बाद भी हमारे पास आम जनता तक पुस्तकालय की पहुँच नहीं बन पाई है। यूँ तो विभिन्न शैक्षिक समितियों में पुस्तकालय की महत्ता के गुणगान किए गए हैं, लेकिन हकीकतन वह आज भी शैक्षिक संस्थानों में एक कोने और कमरों में सिमटी ही दिखाई देती है। जब भी किसी सुनियोजित और योजनाबद्ध नगर का निर्माण किया जाता है तब स्कूल, अस्पताल, सामुदायिक भवन, बाजार आदि की योजना बनाई जाती है लेकिन एक पुस्तकालय भी हो ऐसी चर्चा की सुगबुगाहट सुनाई नहीं देती। आधुनिक शहरों और अत्याधुनिक शहरों के परिकल्पनाकार मॉल्स, फास्ट रेल, यातायात के साधन, वातानुकूलित शॉपिंग सेंटर तो बनाते हैं लेकिन ज्ञान-पुस्तकादि के चाहने वालों को दरकिनार कर दिया जाता है। महानगरों में ही पुस्तकालय नजर नहीं आते तो कस्बों और द्वितीय श्रेणी के शहरों में पुस्तकालय की तलाश तो और भी कठिन काम है। दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, चेन्नई आदि शहरों में तो फिर भी अत्याधुनिक पुस्तकालय नजर आ जाएँ लेकिन छोटे शहरों में तो वाचनालय तक ही महदूद कर दिए जाते हैं। जहाँ पुस्तकालय के नाम पर अखबार और पत्रिकाएँ पढ़-पलट सकते हैं। यदि दिल्ली की बात की जाए तो अमेरिकन,

ब्रिटिश लाइब्रेरी के अलावा दिल्ली विश्वविद्यालय एवं अन्य कॉलेजीय और विश्वविद्यालयी लाइब्रेरी तथा संसद की लाइब्रेरी को छोड़ दें तो कोई भी लाइब्रेरी नजर नहीं आएगी। एक बेहद पुरानी लाइब्रेरी लाला हरदयाल पब्लिक लाइब्रेरी, जो 1862 में स्थापित हुई थी, वह इन दिनों बेहद खस्ता हाल में है, को छोड़कर कोई ऐसी जगह नहीं है जहाँ पाठक अपनी पसंद की किताबें, जर्नल आदि पढ़-पलट पाएँ।

लाला हरदयाल पब्लिक लाइब्रेरी में कहते हैं कि 8000 से भी ज्यादा अत्यंत पुरानी पांडुलिपियाँ हैं जो अब तक अपनी मौजूदगी को किसी तरह बचाए हुए हैं। उनकी हालत यह है कि उन्हें उलटने पलटने से डर लगता है, कहीं वे पन्ने टूट न जाएँ। इसलिए सरकार की नींद अब खुली है कि उन पांडुलिपियों को संरक्षित और डिजिटलाइज किया जाए ताकि उन्हें भविष्य के लिए बचाया जा सके। इस लाइब्रेरी की खासियत है कि यहाँ अरबी, फारसी, संस्कृत आदि भाषाओं की अत्यंत पुरानी किताबें संरक्षित की गई हैं, किंतु उचित रखरखाव की कमी की वजह से मरणासन्न हैं। उन्हें जिंदा रखने के लिए भारत सरकार ने अब आर्थिक मदद के हाथ बढ़ाए हैं। यह तो एक लाइब्रेरी की मृत्यु गाथा है। देश के विभिन्न राज्यों में राज्यस्तरीय पुस्तकालय भी हैं जिन्हें बचाए जाने की आवश्यकता है। मालूम हो कि पहले राजा-रजवाड़ों को पढ़ने का शौक बेशक न हो किंतु छवि ऐसी बनी रहे कि उनके यहाँ किताबों की इज्जत की जाती है, वे अपने महल में एक कोना, जिसे पुस्तकालय कहें तो अनुचित नहीं होगा, हुआ करता था। राजा की मृत्यु के बाद न तो महल महफूज रहे और न वे किताबें ही। वे भी सत्ता और शासन के साथ ही अपनी रक्षा के लिए मुँह जोहने लगे। राजस्थान के कई इलाकों में आज भी प्राचीन पुस्तकालय हैं जहाँ बहुत महत्त्वपूर्ण पुरानी पांडुलिपियाँ धूल फाँक रही हैं। यदि हमने आज उन्हें नहीं बचाया तो वे हमारी नागरीय ज्ञान-मीमांसा के भूगोल से सदा के लिए गायब हो जाएँगी।

“राजा की मृत्यु के बाद न तो महल महफूज रहे और न वे किताबें ही। वे भी सत्ता और शासन के साथ ही अपनी रक्षा के लिए मुँह जोहने लगे। राजस्थान के कई इलाकों में आज भी प्राचीन पुस्तकालय हैं जहाँ बहुत महत्त्वपूर्ण पुरानी पांडुलिपियाँ धूल फाँक रही हैं। यदि हमने आज उन्हें नहीं बचाया तो वे हमारी नागरीय ज्ञान-मीमांसा के भूगोल से सदा के लिए गायब हो जाएँगी।”

पटना में स्थित खुदाबक्श ओरिएंटल लाइब्रेरी के बारे में कहा जाता है कि यहाँ पर फारसी, अरबी, पाली, संस्कृत की जितनी पांडुलिपियाँ हैं, वे देश के किसी भी अन्य पुस्तकालय में मिलना दुर्लभ है। लेकिन इस पुस्तकालय की हालत भी दयनीय और शोचनीय है। कर्मचारियों के पद वर्षों से खाली हैं तो हैं, उन्हें भरने की कोशिश नहीं की गई। खाली पदों की समस्या से लाला हरदयाल पुस्तकालय, कोलकाता का राष्ट्रीय पुस्तकालय आदि भी जूझ रहे हैं। शैक्षिक संस्थानों में शिक्षकों के साथ ही लाइब्रेरी प्रोफेशनल्स की बेहद कमी है लेकिन सरकार तदर्थ पर ही काम चला रही है। मालूम हो कि स्कूल, कॉलेजों में कितने शैक्षिक पद खाली हैं, इस तरह की खबरें तो आती रहती हैं लेकिन उन पुस्तकालयों में कितने प्रोफेशनल्स की पोस्ट खाली हैं, इस ओर कोई खास रिपोर्ट नजर नहीं आती।

देश भर में पुस्तकालय विज्ञान में हर साल छात्र-छात्राएँ स्नातक और परास्नातक, एम. फिल्. और पीएचडी. की उपाधि हासिल कर बाजार में उतर रहे हैं लेकिन वे कहाँ जा रहे हैं, इसका आँकड़ा नहीं है। वे सरकारी पुस्तकालयों में तो कार्यरत नजर नहीं आते, तो फिर वे कहाँ हैं? वे निजी शैक्षिक संस्थानों में कम वेतन पर खम रहे हैं। उनकी पुस्तकालय विज्ञान में हासिल दक्षता और कौशल का काफी हिस्सा बेकार जा रहा है, जो कहीं न कहीं मानवीय दक्षता का क्षरण माना जाएगा। पुस्तकालय विज्ञान के पितामह माने जाने वाले एस. आर. रंगनाथन ने आजादी के बाद पुस्तकालय को विज्ञान और विभागीय पहचान दिलाने में अपना योगदान दिया। रंगनाथन का वर्गीकरण सिद्धांत काफी चर्चित काम माना जाता है। इन्होंने कहा था कि पुस्तकालय एक संवर्धनशील संस्थान है, हर किताब इस्तेमाल के लिए है और हर पाठक के लिए किताब होती है आदि। उनके पाँचों सिद्धांतों पर नजर डालें तो आज न तो पाठकों के पास किताब पढ़ने की ललक बची है और न पुस्तकालय ही उपलब्ध हैं। जहाँ पुस्तकालय की सुविधा है, वहाँ पाठक नहीं हैं और जहाँ पाठक हैं, वहाँ पुस्तकें नहीं हैं।

पुस्तकालय महज किताबों, पन्नों, ग्रंथों का घर ही तो नहीं होता। पुस्तकालय एक जीता-जागता स्वयं में शिक्षण संस्थान हुआ करता है। लेकिन आज पाम टॉप, स्मार्ट फोन और विभिन्न गजेट्स के समय में मुद्रित किताबों के प्रयोग बेशक कम हुए हों लेकिन एकबारगी अप्रासंगिक नहीं हुए हैं, क्योंकि विभिन्न प्रकाशन विभाग से हजारों की संख्या में किताबें हर साल छप रही हैं। वे पाठकों तक आएँ, न आएँ लेकिन पुस्तकालयों में जरूर घर बना लेती हैं। देश में जो किताबें छपती हैं उसकी पाँच कॉपी कोलकाता राष्ट्रीय पुस्तकालय में जमा करानी पड़ती हैं। हालात यह हैं कि इस लाइब्रेरी में किताबों को रखने की व्यवस्था तक नहीं है। पुरानी इमारत को बढ़ाने पर ध्यान दिया जाना चाहिए या फिर उन्हें अन्यत्र भवन मुहैया कराया जाए ताकि इस पुस्तकालय के संरक्षणीय उद्देश्य की पूर्ति तो हो।

पुस्तकालय विज्ञान की दुनिया के प्रतिष्ठित प्रोफेसर पी. बी. मंगला का मानना है कि देश और समाज पेपरलेस सोसायटी की ओर बढ़ रहे हैं लेकिन पेपर हमारी जिंदगी से यूँ ही गायब नहीं हो सकता। विश्व भर में हर रोज लाखों पन्ने छप रहे हैं और छप रही हैं किताबें, इसलिए यह कहना बेबुनियाद है कि किताबें खत्म हो जाएँगी। किताबें तो रहेंगी ही बेशक उसके फॉर्म बदल जाएँ। यही देखने में भी आ रहा है कि ऑनलाइन किताबें खरीदने और पढ़ने वालों का वर्ग अलग है जो लगातार खरीद-पढ़ रहा है। श्री ज्ञानेंद्र सिंह, पुस्तकालयाध्यक्ष, दयाल सिंह कॉलेज का मानना है कि आने वाले

दस-पंद्रह सालों में लाइब्रेरी वही नहीं होगी जो 2000 से पहले थी। आज किताबें ईफॉर्म में आ चुकी हैं। बल्कि कहूँ तो यू.जी.सी. एवं अन्य शैक्षिक संस्थाएँ अपने जर्नल्स ईफॉर्म में ही उपलब्ध करा रहे हैं। जिन्हें चाहिए वे ऑनलाइन डाउनलोड कर सकते हैं। निश्चित ही आने वाले वर्षों में किताबें इलेक्ट्रॉनिक रूप में होंगी। किताबों का पुराना स्वरूप भी रहेगा किंतु संख्याएँ कम हो जाएँगी। पर्यावरण संरक्षकों की मानें तो कागज निर्माण में हमारे पेड़ काटे जाते हैं। ईफॉर्म से इन्हें दूर कर सकते हैं।

डॉ. राघवेंद्र प्रपन्न, महर्षि वाल्मीकि कॉलेज ऑफ एजूकेशन में सहायक प्रोफेसर के तौर पर अध्यापन कर रहे हैं। इनका मानना है कि पढ़ना और शिक्षित करने के लिए किसी अभियान के माध्यम से जागरूकता तो पैदा की जा सकती है लेकिन इस दक्षता को विकसित करने और उसे बच्चों तक में प्रवाहित करने में और भी कई तत्त्व काम करते हैं। बिना पुस्तकालय को बचाए हम इसकी परिकल्पना भी नहीं कर सकते कि समाज में पुस्तक और पुस्तकालय के बगैर बच्चों और वयस्कों में पढ़ने की आदत को बरकरार रख सकते हैं। इनका मानना

है कि पढ़ने की आदत को बचाए बगैर लाइब्रेरी को नहीं बचाया जा सकता। वहीं महर्षि वाल्मीकि कॉलेज ऑफ एजूकेशन के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री रेयाज़ का कहना है कि आने वाले समय में पारंपरिक किताबें सेल्फ से गायब हो जाएँगी। लाइब्रेरी में किताबें कम, ईफॉर्म में ज्यादा नॉलेज कंटेनर मिलेंगी। इतना ही नहीं बल्कि पाठकों की आवाजाही भी लाइब्रेरी में कम होगी, क्योंकि उन्हें जानकारियाँ और किताबें तमाम चीजें ऑनलाइन और इलेक्ट्रॉनिक रूप में मिल जाया करेंगी। इससे भी बड़ी बात यह कि पुस्तकालय तो तब होंगे जब पढ़ने वाले बचेंगे। आने वाले दिनों में पढ़ने की आदत काफी कम होगी। जो भी होगा, ई-किताबें और ईकंटेनर होंगे।

राजकमल प्रकाशन के प्रबंध संपादक श्री अशोक माहेश्वरी का मानना है कि हार्ड बाउंड में किताबों को पढ़ने का नशा नहीं जाएगा। हाँ, किताबों के साथ चलने वाली किंडल, पाम टॉप, ईबुक्स आ जाएँगी लेकिन पुरानी किताबें भी रहेंगी। जहाँ तक लाइब्रेरी के स्वरूप का मसला है कि लाइब्रेरी में संभव है, ऐसे प्रावधान कर दिए जाएँ कि एक ओर एक जगह पर पुरानी प्रकाशित किताबें रखी हों और दूसरी ओर ईबुक्स रखी मिलें। लाइब्रेरी में बदलाव ऐसे भी होंगे कि मुद्रित किताबों की खरीद पर असर पड़े, वहीं ईबुक्स भी अपनी जगह बना चुकी होंगी।

कहते हैं, इसी शहर में एक लाइब्रेरी भी हुआ करती थी। अब उसकी हालत खराब-सी है। जैसी विश्व भर में हजारों भाषाएँ या तो मर चुकी हैं या फिर मरने की कगार पर हैं। एक लाइब्रेरी का खत्म होना शायद हम आज न समझ पाएँ लेकिन जिन्हें किताबों से मुहब्बत है, जिन्हें पढ़ने की लत है, वे बड़े परेशान होंगे। लेकिन संभावना यह भी है कि उन्हें बहलाने के लिए नए-नए, किस्म-किस्म के ईबुक्स और नॉलेज कंटेनर आ जाएँ और पुरानी लाइब्रेरी नई चाल में ढली नजर आए।

आने वाले दिनों, वर्षों में पुस्तकालय डिजिटल हो चुका होगा। डिजिटल का मतलब यह है कि पुरानी से पुरानी और नई किताबें सॉफ्ट कॉपी में उपलब्ध होंगी। दूसरे शब्दों में कहें तो किताबें माइक्रो फिल्म, माइक्रो फीस, टेबलेट्स आदि में तब्दील कर दी जाएँगी। इससे भी एक कदम आगे बढ़कर कहें तो किताबें, पत्रिकाएँ, जर्नल्स आदि ऑनलाइन पढ़ी जा रही हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि पेपरलेस सोसायटी की अवधारणा समाज में तेजी से फैल रही है। देश के तमाम शोध संस्थान, विश्वविद्यालयों की लाइब्रेरी अपनी संदर्भ सामग्रियों को इनफ्लिबनेट के जरिए ऑनलाइन साझा करती हैं। कोई भी शोधछात्र, पाठक जो सदस्य हैं, वे उन सामग्रियों का इस्तेमाल कर सकते हैं। कई वैश्विक शोध जर्नल्स ऑनलाइन उपलब्ध हैं जिसका संग्रह हमें लाइब्रेरी में मिल सकता है।

पुस्तकालयों को डिजिटल करने का काम नब्बे के दशक में शुरू हो चुका था। इस परियोजना के तहत विभिन्न विश्वविद्यालीय पुस्तकालय अपने संस्थान में हुए एम. फिल्., पीएचडी. के शोध प्रबंधों, जर्जर हालत में पहुँच चुकी किताबों को स्कैन करके उन्हें डिजिटल फॉर्म में संरक्षित कर रहे थे। इस कार्य में इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय संस्कृति केंद्र, दिल्ली की लाइब्रेरी में देश की तमाम कला, संस्कृति, संगीत आदि से संबंधित किताबों, पांडुलिपियों को डिजिटल फॉर्म में संरक्षित करने का काम किया गया है। वहीं राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में भी पुरानी पांडुलिपियों को संरक्षित करने का काम होता है। जिन किताबों, ग्रंथों, चित्रों की स्याही, कागज खराब हो रहे हैं, उन्हें खासकर डिजिटल फॉर्म में तब्दीली का काम कुशलता से होता है।

गौरतलब है कि हमने अपनी ज्ञान-संपदा को श्रुति परंपरा से हस्तांतरित और अग्रसारित किया है। यह हम नागर समाज की जिम्मेदारी बन जाती है कि हम हमारे ग्रंथों, पांडुलिपियों को आने वाली पीढ़ी के लिए संरक्षित कर सकें। डिजिटल कंटेंट को पढ़ने, हासिल करने की कुछ तकनीकी दिक्कतें व सीमाएँ हैं जिन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। दूर-दराज के इलाकों में यदि इंटरनेट नहीं है तो वहाँ के पाठक ऑनलाइन कंटेंट का लाभ नहीं उठा सकेंगे। लेकिन यदि अन्य डिवाइस उपलब्ध हैं तो वे पेन ड्राइव आदि में प्राप्त कर उसका इस्तेमाल कर सकते हैं।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत : गौरवशाली ज्ञान-यात्रा के 60 वर्ष

01 अगस्त, 1957 को नई दिल्ली के विज्ञान भवन में देश में एक पुस्तक संस्कृति के निर्माण एवं विकास के दृष्टिगत जिस 'पुस्तक अस्पताल', नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया की देश के तत्कालीन उपराष्ट्रपति, महामहिम श्री एस. राधाकृष्णन एवं शिक्षा मंत्री, मौलाना अबुल कलाम आजाद की गरिमामयी उपस्थिति और सान्निध्य में, देश के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा नींव रखी गई, आज वह एक वटवृक्ष का रूप ग्रहण कर चुका है—आज हम 60 वर्ष के हो गए हैं।

उपराष्ट्रपति डॉ. एस. राधाकृष्णन राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के स्थापना दिवस 1 अगस्त 1957 को विज्ञान भवन, नई दिल्ली में बोलते हुए। साथ में प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू एवं शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद

एनबीटी के अपने संक्षिप्त नाम से देश भर में जाना जाने वाला नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, जो अब अपने हिंदी नाम 'राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत' से अधिक ख्यात हो चला है, ने अपनी गौरवपूर्ण ज्ञान-यात्रा के 60 वर्ष पूर्ण कर लिए हैं और आज हम इसी अवसर का उत्सव मना रहे हैं।

दूरद्रष्टा और स्वप्नदर्शी देश के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू के मानस-बीज, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने अपनी भौतिक यात्रा, देश की राजधानी नई दिल्ली की एक बस्ती, निजामुद्दीन से प्रारंभ की। तदंतर, ओरोबिंदो मार्ग स्थित ग्रीन पार्क क्षेत्र इस यात्रा का दीर्घकाल तक पड़ाव बना रहा जहाँ की तीन इमारतें, क्रमशः ए-4, ए-5 एवं ए-15 लंबे समय तक न्यास की विकास-यात्रा की साक्षी बनी रहीं। यद्यपि, बाद में कुछ अवधि तक इसी क्षेत्र की एफ-79 इमारत में भी न्यास का कार्यालय रहा, जहाँ से अंततः 2008 में स्थानांतरित होकर न्यास कार्यालय स्थायी रूप से वसंत कुंज स्थित 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया में नवनिर्मित भवन, नेहरू भवन में आ गया है। तत्कालीन मानव संसाधन विकास मंत्री श्री अर्जुन सिंह ने न्यास के इस नवनिर्मित कार्यालय का अपने कर-कमलों द्वारा उद्घाटन किया था।

स्वाधीनता के बाद साक्षरता के बेहद निचले स्तर पर अवस्थित हमारे देश में पुस्तक पठन की आदत, प्रवृत्ति और संस्कृति के निर्माण और विकास की बड़ी गंभीर आवश्यकता थी। इसे हमारे प्रथम प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने बड़ी शिद्दत से महसूस किया और यहीं न्यास की स्थापना के विचार का जन्म हुआ। यह अनायास नहीं था कि न्यास के स्थापना दिवस, 1 अगस्त, 1957 को श्री नेहरू ने अपने संबोधन में न्यास को एक ऐसे सेवा केंद्र के रूप में परिकल्पित और निरूपित

न्यास के 'प्रतीक चिह्न (लोगो)' का समय के साथ बदलाव

दीपक कुमार गुप्ता

कृति : मूल रूप से 'दीपक मंजुल' के नाम से काव्य विधा में लेखन के अलावा समसामयिक विषयों पर भी पर्याप्त लेखनी। स्वतंत्र रूप से दो काव्य संग्रह 'वक्त की शिला पर' एवं 'तन जाती हैं इंद्रधनुष-सी वे' प्रकाशित, जबकि काव्य संकलन 'कहने को बहुत कुछ था...' (संपा. : विवेक गौतम) में संकलित पांच युवा कवियों में एक। कई राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर कविता, लेख, यात्रा-लेख, व्यंग्य आदि प्रकाशित।

संप्रति : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में हिंदी के सहायक संपादक।

संपर्क : 9350750555

किया जिसे उन्होंने 'पुस्तक अस्पताल' की संज्ञा दी। उन्होंने अपने संबोधन में न्यास के प्रमुख उद्देश्य के रूप में देश की विशाल आबादी के लिए किफायती मूल्य पर उच्च गुणवत्ता वाली पुस्तकों की उपलब्धता को सुनिश्चित करने के साथ ही लोगों में पुस्तक पठन के लिए एक अनुकूल वातावरण के सृजन की आवश्यकता को भी रेखांकित किया।

प्रथम विश्व पुस्तक मेला, नई दिल्ली, 1972 के दौरान लिया गया एक चित्र

1957 से 2017 तक की 60 वर्ष की हमारी यात्रा में हमने अनेक अवसरों पर और अनेक स्थानों पर मील के पत्थर गाड़े। 1972 से नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले की शुरुआत एक ऐसी ही पहल थी जो सन् 2017 में अपने 25वें पड़ाव पर पहुँची। इस बार के विश्व पुस्तक मेले में प्रगति मैदान में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के 60 साल की प्रस्तुति एक महत्त्वपूर्ण परिघटना रही। 'यह मात्र सिंहावलोकन नहीं' शीर्षक से

25वें नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले-2017 में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के 60 साल पूर्ण होने पर 'यह मात्र सिंहावलोकन नहीं' शीर्षक से एक प्रदर्शनी

आयोजित इस प्रस्तुति के अंतर्गत न्यास की 60 वर्षों की यात्रा की कुछ गौरवशाली पहल और उपलब्धियों को विशेष रूप से निर्मित एक प्रदर्शनी स्थल पर दर्शाया गया था। इसके अंतर्गत कुछ महत्त्वपूर्ण अभिलेखीय छायाचित्र/सामग्री के प्रदर्शन के अलावा एनबीटी की सर्वाधिक बिकने वाली पुस्तकों (बेस्ट सेलर्स) को भी प्रदर्शित किया गया था। चित्रकार-भित्ति का निर्माण कुछ प्रख्यात भारतीय चित्रकारों के कार्यों को प्रदर्शित करने के लिए किया गया था जिन्होंने इन बेस्ट सेलर्स के लिए चित्र बनाए थे। इसके अलावा कुछ अन्य विशेषताएँ भी इस प्रदर्शनी स्थल को 'विशिष्ट' बना रही थीं। 10 जनवरी, 2017 को केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री माननीय श्री प्रकाश जावड़ेकर ने प्रदर्शनी कक्ष का उद्घाटन करते हुए एक बोर्ड पर संदेश लिखा—'पढ़ना ही जिंदगी है'। न्यास के अध्यक्ष श्री बल्देव भाई शर्मा

विश्व पुस्तक मेला-2017 के दौरान केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री माननीय श्री प्रकाश जावड़ेकर ने बोर्ड पर संदेश लिखा—'पढ़ना ही जिंदगी है'।

इस अवसर के लिए विशेष रूप से निर्मित एक पुस्तिका में अपने संदेश में न्यास की स्थापना के साठवें वर्ष को 'एक बड़ा अवसर' निरूपित करते हुए लिखा—'इस संस्था (न्यास) का मुख्य उद्देश्य देश में पुस्तकों के प्रसार और पढ़ने की संस्कृति के विकास की दिशा में कार्य करना है।' न्यास-निदेशक डॉ. रीता चौधरी ने लिखा—'हम उपलब्धि के बोध को अनुभव करते हैं, लेकिन नए रास्ते की तलाश निरंतर चलती रहनी चाहिए।'

हमारी 60 वर्षों की यह यात्रा एक सामान्य यात्रा नहीं रही, वरन् इन पूरे वर्षों में हम पुस्तकों के संग-संग चले, पुस्तकें—जिनमें ज्ञान का खजाना भरा होता है। इस अर्थ में हमारी यह यात्रा 'पुस्तक-यात्रा' भी कही जा सकती है और 'ज्ञान-यात्रा' भी। हम अपनी सभ्यता और संस्कृति को ग्रंथों के माध्यम से ही जान सकते हैं और भारत की सभ्यता-संस्कृति तो विश्व में प्राचीनतम मानी और समझी जाती है। कई हजार वर्षों की हमारी मनीषा ताड़पत्र की पांडुलिपियों में सुरक्षित रही जो 15वीं सदी में मुद्रण कला के आविष्कार के बाद कागजों पर, पुस्तक रूप में मुद्रित होकर आने वाली पीढ़ियों के लिए भी सुरक्षित रह पाएगी, यह तय है।

हमने आधी सदी से अधिक की इस पुस्तक-यात्रा में अनेक नए और अभिनव प्रयोग भी किए जिसका हमें अच्छा प्रतिसाद मिला। 'पहिये पर पुस्तकें' हमारी एक ऐसी ही पहल थी। देश के दुर्गम, दुरूह और दूरस्थ अंचलों में एक वृहत्तर पाठक वर्ग तक पहुँचने की हमारी ललक और उद्देश्य से बीती सदी के नब्बे के दशक में, सन् 1992 से हमने सचल पुस्तक वाहन में प्रदर्शनी लगाने की शुरुआत की, और आज हम समूचे देश में ऐसी 5,000 से अधिक प्रदर्शनियाँ आयोजित कर चुके हैं जिसमें पूर्वोत्तर का दुर्गम पहाड़ी क्षेत्र भी शामिल है। 'किताब क्लब' की योजना हमारी ऐसी ही एक अन्य अभिनव और नवाचारी पहल है जो देश में घर-घर, द्वार-द्वार तक पुस्तकें पहुँचाने के हमारे लक्ष्य और उद्देश्य को सुनिश्चित करती है। इस योजना के तहत बने सदस्यों को पुस्तक खरीद पर विशेष छूट दी जाती है। अब तक 50,000 से अधिक किताब क्लब के सदस्य पंजीकृत किए जा

उपराष्ट्रपति श्री आर. वेंकटरमण 1985 में
राष्ट्रीय पुस्तक सप्ताह का उद्घाटन करते हुए।

चुके हैं। वर्ष 2003-04 भारत के गौरव का वर्ष साबित हुआ था, क्योंकि इस अवधि में यूनेस्को और अंतरराष्ट्रीय प्रकाशक संघ ने दिल्ली को विश्व पुस्तक राजधानी के रूप में चयनित कर सम्मानित किया था।

अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेलों में हमें अनेक अवसरों पर सम्मानित अतिथि देश के रूप में निमंत्रित किया जा चुका है। प्रतिष्ठित फ्रैंकफुर्त पुस्तक मेला (जर्मनी) में हमें दो बार—1986 में तथा 2006 में—यह सम्मान मिला जबकि 2009 में मॉस्को अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेला एवं 2010 में बीजिंग अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेले में भी हमें यह सम्मान मिला

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के
रजत जयंती समारोह-1983 में प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी

है। हम विश्व के दस से अधिक प्रतिष्ठित अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेलों में नियमित रूप से भाग लेते हैं। देश भर में पुस्तक संस्कृति के वातावरण के सृजन के अपने महत्तर उद्देश्य से संचालित हम 14 से 20 नवंबर की अवधि में देश भर में पुस्तक सप्ताह का आयोजन करते हैं जिसके अंतर्गत अनेक प्रकार की पुस्तकीय गतिविधियाँ आयोजित की जाती हैं।

बच्चों में पुस्तक पठन आदत की बचपन से ही शुरुआत करने के उद्देश्य से न्यास ने अपने मुख्यालय परिसर में 'राष्ट्रीय बाल साहित्य केंद्र' नाम से एक विशेष अनुभाग स्थापित किया है जिसका उद्देश्य देश भर में विभिन्न भारतीय भाषाओं में बाल साहित्य के समन्वय, आयोजन और सहायता का कार्य करना है।

देश भर में समय-समय पर पुस्तक मेला, पुस्तक प्रदर्शनी लगाना, विचार-गोष्ठी, कार्यशाला, प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का आयोजन करना आदि भी हमारी महत्त्वपूर्ण गतिविधियों में शामिल हैं। उच्च शिक्षा की पुस्तकों के उचित मूल्य पर प्रकाशन को बढ़ावा देने के

18 सितंबर 2014 को हैदराबाद हाउस, नई दिल्ली में प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी एवं चीन के राष्ट्रपति श्री क्सी जिनपिंग की उपस्थिति में नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला-2016 में चीन को अतिथि देश आमंत्रित करने हेतु समझौता ज्ञापन का आदान-प्रदान करते श्री डॉ. एम.ए. सिकंदर, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के भूतपूर्व निदेशक एवं श्री काइ फुछाओ, पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना के मुख्य प्रशासक (उपाध्यक्ष), स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ प्रेस, पब्लिकेशन, रेडियो, फिल्म एंड टेलीविजन (एस.ए.पी.पी.आर.एफ.टी.)

उद्देश्य से लेखकों तथा पाठ्य-पुस्तकों एवं संदर्भ सामग्री के प्रकाशकों को आर्थिक सहायता योजना भी न्यास की महत्त्वपूर्ण गतिविधियों में सम्मिलित है।

पुस्तक प्रोन्नयन हेतु विविध गतिविधियों में सम्मिलित रहने और/या इन्हें संचालित करने के अलावा पुस्तक प्रकाशन न्यास का एक प्रमुख कार्य है। न्यास हिंदी तथा अंग्रेजी के साथ ही सभी महत्त्वपूर्ण क्षेत्रीय भाषाओं में पुस्तकों का प्रकाशन तो करता ही है, अनेक जनजातीय भाषाओं, जिनमें पूर्वोत्तर भी शामिल है, में भी पुस्तक प्रकाशन का कार्य करता है। हम कुछ क्षेत्रीय भाषाओं-बोलियों में भी प्रकाशन कार्य करते हैं तथा विभिन्न भारतीय भाषाओं में परस्पर अनुवाद भी प्रकाशित करते हैं। ये सभी प्रकाशन सुविचारित अनेक पुस्तकमालाओं के अंतर्गत किए जाते हैं।

हमारा प्रतीक चिह्न बरगद के वृक्ष का प्रतिरूप है। बरगद का वृक्ष दृढ़ता और ज्ञान का प्रतीक है। इस वृक्ष का डिजाइन ऐसा है जो एक खुली किताब के पृष्ठ जैसा लगता है। कालिदास के 'मेघदूतम्' से उद्धृत हमारा आदर्श वाक्य, 'एकः सूते सकलम्' पुस्तकों की दुनिया में वांछित हरसंभव प्रयास को पूर्ण करने के एनबीटी के उद्देश्य को प्रकट करता है।

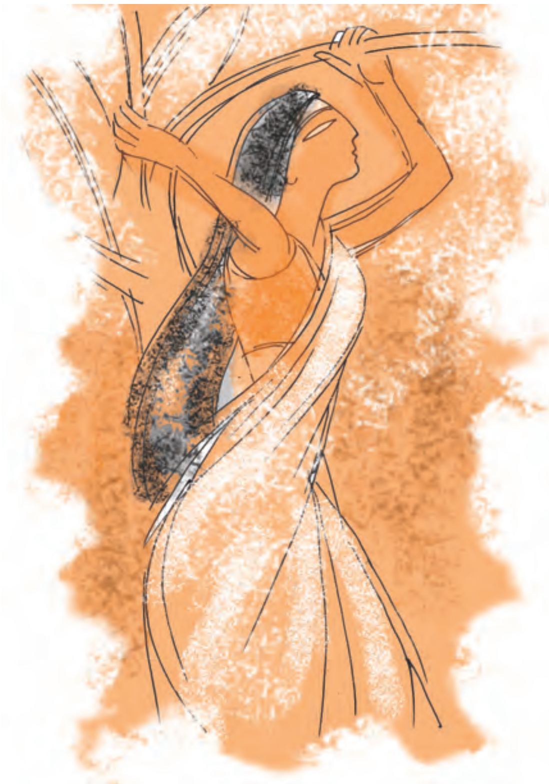

देह-किताब

देह किताब नहीं हो सकती
पर, किताब-सी देह है।
हम, तुम, ये, वे, सब किताब हैं
मुझे नहीं संदेह है।।

मेरी देह किताब भला क्या
धूल धूसरित ढेर है।
अधर बोली है जिल्द अभी तक
और अभी भी देर है।।

ऐसा लगता पन्ना-पन्ना
अब तक रहा कुँवारा है।
मन की मेहँदी रचने वाला
द्वारे नहीं पधारा है।।

देह-किताब सत्य ही दो हैं
पर समान-सा अर्थ है।
सही समझ का दावा कर ले
ऐसा कौन समर्थ है।।

सुलग रहे हैं अक्षर-अक्षर
नस-नस में अँगड़ाई है।
लगता है पदचाप किसी की
गर्द हटाने आई है।।

कोई आए हाथ लगाए
हर पन्ने को पढ़ डाले।
मेरा पश्चाताप मिटाकर
अपने मन की कर डाले।।

आने वाले मुझे उठाकर
अपने हाथों धर लेना।
और सभी की नजर बचाकर
चुंबन अंकित कर देना।।

एक गर्म चुंबन की खातिर
इतनी सर्द बनी हूँ मैं।
मावस की मजदूरिन जैसी
गर्द-गुबार सनी हूँ मैं।।

• • •

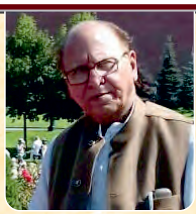

डॉ. राजकुमार तिवारी 'सुमित्र'

जन्म : 25/10/1938, जबलपुर

शिक्षा : एम.ए., पी-एच.डी., डी. लिट् (मानद)

संप्रति : पूर्व प्राध्यापक खालसा कॉलेज, अकादमिक सलाहकार 'इग्नू'। विगत साठ वर्षों से साहित्य, पत्रकारिता, शिक्षा एवं समाज सेवा में सक्रिय। अमेरिका, इंग्लैंड, रूस की यात्राएँ।

कृति : विविध विषयों की तीस पुस्तकें प्रकाशित, दस से भी ज्यादा पुस्तकें प्रकाशनाधीन, पूर्व संपादक—दैनिक नवीन उनिय, दैनिक जयलोक, जबलपुर।

सम्मान : प्रदेश, देश-विदेश की तीन-तीन सौ संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

संपर्क : जबलपुर (म.प्र.)।

दूरभाष : 9300121702

बूँदों की अठखेलियाँ

अशोक 'अंजुम'

जन्म : 15 दिसंबर 1966, गाँव दवथला, जिला अलीगढ़, उत्तर प्रदेश

शिक्षा : बी.एस-सी., एम.ए. (अर्थशास्त्र, हिंदी), बी.एड.

कृति : 18 मौलिक और 37 संपादित पुस्तकें प्रकाशित। विभिन्न भाषाओं में रचनाओं का अनुवाद।

सम्मान/पुरस्कार : दर्जनों सम्मान, दर्जनों पुरस्कार, विशेष रूप से प्रशासन द्वारा प्रदत्त 'नीरज पुरस्कार-2014'

संप्रति : अध्यापन

संपर्क : मोबाइल : 9258779744

ई-मेल : ashokanjumaligarh@gmail.com

शब्द-शब्द बूँदें गिरें, यत्र-तत्र-सर्वत्र।
बादल टाइप कर रहे, फिर पावस के पत्र।।

बूढ़े हुए जवान फिर, देखा ऐसा हाल।
सावन में गदरा गए, फिर पोखर, फिर ताल।।

नदिया बौराने लगी, छोड़ पुराने छोर।
मन में रख दुर्भावना, चली गाँव की ओर।।

मौसम से कुछ यूँ हुए, पावस के अनुबंध।
गली-गली में बिछ गई, सौंधी-सौंधी गंध।।

छनन-छनन-छन कर रही, आँगन वाली टीन।
बूँदें कत्थक कर रहीं, दिवस हो गए तीन।।

दुखिया की छत कर रही, टप-टप, टप-टप रोज।
पखवाड़े से हो रही, कोलतार की खोज।।

पावस का अद्भुत असर, देखा हमने मित्र।
चित्रकार ने रँग दिए, हरे-हरे सब चित्र।।

बूँदों की अठखेलियाँ, प्रिये करें बेचैन।
मन में बादल याद के, बरसा करते नैन।।

पल में बादल घिर गए, पल में तपती धूप।
नेताओं जैसा लगे, मौसम का ये रूप।।

छम-छम बूँदें नाचतीं, बादल छेड़ें साज।
हरियाली रचने लगी, महाकाव्य फिर आज।।

नदिया को यूँ भा गई, बस्ती, मानव-गंध।
इस बारिश में एक दिन, तोड़ दिए तटबंध।।

डरे-डरे-से लोग हैं, चीख-पुकारें शोर।
इस बारिश में हो गईं, नदियाँ आदमखोर।।

नदिया फैली गर्व से, पाकर नीर अपार।
किसकी शामत आएगी, पता नहीं इस बार।।

व्यंग्य

छत पर धूप खाते हुए एक रिश्ते की तलाश

जवाहर चौधरी

जन्म : 11 फरवरी 1952, इंदौर, मध्य प्रदेश।

शिक्षा : एम.ए., पी-एच.डी., समाजशास्त्र।

लेखन : मुख्य रूप से व्यंग्य लेखन, कहानियाँ व लेख, कार्टूनकारी भी।

प्रकाशन : आठ व्यंग्य-संग्रह, एक कहानी-संग्रह, एक लघुकथा-संग्रह, एक नाटक, दो उपन्यास।

सम्मान : मध्य प्रदेश साहित्य परिषद् का 'शरद जोशी पुरस्कार' कृति 'सूखे का मंगलगान', 1993; कादंबिनी द्वारा आयोजित अखिल भारतीय प्रतियोगिता में व्यंग्य रचना 'उच्चशिक्षा का अंडरवर्ल्ड', 1992; माणिक वर्मा व्यंग्य सम्मान-2011, भोपाल; 'गोपालप्रसाद व्यास व्यंग्यश्री सम्मान-2014', हिंदी भवन, दिल्ली।

संपर्क : 16 कौशल्यापुरी, इंदौर-452001

फोन : 09406701670, 0731-2401670

ई-मेल : jc.indore@gmail.com

इस वक्त यानी सुबह के साढ़े आठ बजे बहुत सर्दी पड़ रही है। इधर लोग रात जो पड़ती है उसे 'ठंड' कहते हैं। इसके विस्तार में जाए बगैर मेरी तरह आप भी मान लो कि कहते होंगे, अपने को क्या? जो मिल जाए उससे काम चला लेने की आदत वाली प्रजा छोटी-मोटी गलतियों पर ध्यान नहीं देती है। तो कह सकता हूँ कि सर्दी बहुत लग रही है, और जुकाम हो जाए तो 'सर्दी हो गई' है। कई लोग इस स्थिति को 'सर्दी खा जाना' भी कहते हैं। दरअसल अपने देश में खाने की रेंज बहुत बड़ी है। सर्दी से लेकर रिश्वत तक सब इसी से व्यक्त होता है।

मैं नीचे काँप रहा था तो घर वालों ने कहा, छत पर चले जाओ और धूप खाओ थोड़ी। धूप में बैठे या पड़े हुए आदमी और धूप खाते हुए आदमी में अंतर होता है। ऐसा माना जाता है कि जो धूप खाते हैं वे सर्दी नहीं खाते। मैं छत पर हूँ और देख रहा हूँ कि अभी धूप खाने लायक नहीं हुई है। सो, इन द मीन टाइम, हवा खा रहा हूँ। हवा जो है, हमारे एरिया में प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। प्रॉपर्टी डीलरों ने खास हवा की मात्रा की वजह से इस एरिया के भाव बहुत बढ़ा रखे हैं। अभी पिछले दिनों दो गली छोड़ के एक प्लॉट बिका है। सुना है, खरीदने वाले ने हवा की 'मात्रा' के काफी पैसे दिए, वरना प्लॉट तो कहीं भी मिल जाता। देखिए, अगर आप प्रबुद्धनुमा कुछ हैं तो हवा की 'मात्रा' को लेकर आपत्ति कर सकते हैं, यह आपकी समस्या है। मैं प्रबुद्ध नहीं हूँ सो हवा की मात्रा को लेकर मुझे तब तक कोई दिक्कत नहीं है जब तक कि फेफड़े भर मुझे मिलती रहे।

सामने तीन मंजिला मकान है जो दरअसल एक बँगला है और जिस पर 'लक्ष्मी निवास' भी लिखा हुआ है। यहाँ विश्विहारी 'श्याम सुमन' जी रहते हैं। लक्ष्मी गृह स्वामिनी का नाम है। चूँकि वे ब्याहकर लाई गई हैं, इसलिए ऑटोमैटिक गृह स्वामिनी हो गई हैं। दरअसल वे कैशलेस लक्ष्मी हैं। वे दुर्गा, काली, चंडी या कुछ भी होती, कैशलेस ही होती। आपको लग रहा होगा कि श्याम सुमन जी कवि या लेखक-वेखक टाइप कुछ हैं। अगर लग रहा है तो लगने दीजिए, इसमें

कोई हर्ज नहीं है, थोड़ी देर में अपने आप ठीक हो जाएगा। लेकिन सचाई ये है कि श्याम सुमन दरअसल 'रात के पंछी' हैं। कुछ लोगों को इस वजह से लगता है कि उन्हें अँधेरे में भी दिखाई देता है। वास्तविकता क्या है, अभी कुछ साफ नहीं है।

तो श्याम सुमन जी अपनी तीसरी मंजिल पर टॉवल लपेटे बैठे धूप खा रहे हैं। उनकी छत पर खाने लायक धूप आ चुकी है। अगर थोड़ी ओट मिल जाए तो वे अपने और धूप के बीच टॉवल को बाधा नहीं बनने दें। किंतु अभी तक उन्होंने ऐसा नहीं किया है, जाहिर है कि वे शिष्टाचार जैसी अनावश्यक बातों का भी बड़ी शिद्दत से खयाल रख रहे हैं। विकास इसी को कहते हैं। आखिर आदिकाल से चलकर मानव तीसरी मंजिल तक पहुँच गया है तो उसकी प्रशंसा की जानी चाहिए। अगर वे मेरी ओर देख भर लेंगे तो मैं मुस्कराते हुए हाथ उठा कर उनका अभिवादन करना चाहूँगा। लेकिन हकीकत ये है कि वे पड़ोसी भी हैं। अच्छे पड़ोसी का धर्म होता है कि वो पास-पड़ोस में झाँके तक नहीं, चाहे कोई मर ही क्यों न रहा हो। लोग मानते हैं कि जब आप पड़ोसी की मदद के लिए हाथ आगे बढ़ाते हैं तो ईश्वर अपने हाथ खींच लेता है। इसलिए सच्चे पड़ोसी कभी मदद को आगे नहीं आते हैं और ईश्वर में हमारी आस्था को मजबूत करते हैं। इसी का नाम 'पड़ोसी धर्म' होता है।

काफी समय हुआ, एक बार हमारी मुलाकात हुई थी, हमने हाथ तक मिला लिया था। यह लगभग वही समय था जब हमारे प्रधान मंत्री चीनी नेताओं को स्वागत भोज दे रहे थे। श्याम सुमन जी के साथ इस मुलाकात को मीडिया ने भले ही कवर नहीं किया हो, पर मोहल्ले के लोगों ने लाइव देखा था, लेकिन छोटा-मोटा घोटाला जैसा कुछ मानकर सबने तुरंत भुला भी दिया था। मुझे लोगों की इस तरह की प्रवृत्ति पर आपत्ति है। छोटे क्या, वे बड़े घोटाले भी भूल जाते हैं। अभी तक यह समझ में नहीं आया है कि लोकतंत्र की सफलता के पीछे भूलने का महत्त्व है या याद रखने का? अगर मौका मिला तो श्याम सुमन जी से इस बिंदु पर विचार करना चाहूँगा। कुछ और हो न हो, ऐसा करने से वे खुश अवश्य हो जाएँगे। पड़ोसी अगर खुश हो तो ऐसे समय बड़े काम आता है जब आप घरेलू फटकार खाकर बाहर निकल आए हों और सामान्य होने की प्रक्रिया में किसी से बात करने के इच्छुक हों। इस तरह की विशेष परिस्थितियों में प्रोटोकोल भी आड़े नहीं आता।

आहा!!! अब मेरी छत पर भी धूप आ गई है। वंचित होने का जो अहसास अभी तक जारी था, वह समाप्त हो रहा है। मैं नामालूम किस्म के आत्मविश्वास से भर रहा हूँ और इसे व्यक्त करने के लिए एक जोरदार अँगड़ाई लेना चाहता हूँ, ताकि श्याम सुमन मुझे और मेरी धूप को नोटिस करें। शुरुआती कोशिशों के बाद मैं खाँसता हूँ। खाँसना एक कला है, इसकी भी अपनी भाषा होती है जिसमें पारंगत होते-होते आदमी अपने को सीनियर सिटीजन की लाइन में बरामद करता है। पहले जब मोबाइल फोन नहीं था, लोग एसएमएस की जगह खाँस दिया करते थे। हमारे दादा-दादी इस खाँसी-चेट से बिना किसी की जानकारी में आए बहुत-सा संवाद कर लेते थे। मेरी कोशिश मात्र इतनी है कि श्याम सुमन जी एक बार पलटकर देख लें तो उनका अभिवादन हो जाए। आखिर जब दो लोग एक ही सूरज से धूप खा रहे हों तो उनमें एक रिश्ता तो बन ही जाता है।

भारत की भाषाओं का बहनापा मुझे ऊर्जा देता है

–डॉ. रविप्रकाश टेकचंदाणी

केंद्रीय हिंदी निदेशालय विगत पाँच दशकों से हिंदी के प्रचार-प्रसार के दायित्व का निर्वाह कर रहा है। अपनी पूरी कालावधि में केंद्रीय हिंदी निदेशालय भारत के उन दूरस्थ प्रदेशों को भाषा के स्तर पर मुख्य धारा में लाने के लिए अथक रूप से परिश्रमरत रहा है। भाषा के संबंध में भारत सरकार की एक महत्त्वपूर्ण कार्य इकाई होने के कारण केंद्रीय हिंदी निदेशालय एक बड़ी परिधि में अपनी गतिविधियाँ कर रहा है।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय के कार्यों पर इस संगठन के हाल ही तक निदेशक रहे डॉ. टेकचंदाणी से श्री रत्नेश कुमार मिश्र की बातचीत :

रत्नेश कुमार मिश्र

जन्म : 4/12/1977

शिक्षा : राँची विश्वविद्यालय राँची से एम.ए. (हिंदी)

संप्रति : केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार में सहायक अनुसंधान अधिकारी के पद पर कार्यरत।

विभिन्न सरकारी संस्थानों में राजभाषा प्रशिक्षण का कार्य, विश्वप्रसिद्ध मार्बल कॉमिक्स सीरीज की हिंदी अनुवाद परियोजना में संपादन, लैंग्वेज कनेक्ट, न्यूहैम्स रो, लंदन, यू.के. तथा इंटरनेशनल ट्रांसलेटिंग एजेंसी, यूटा, यू.एस. के पैनल अनुवादक।

भाषिक बहुलता वाले इस देश में केंद्रीय हिंदी निदेशालय के कामकाज के महत्व को आप किस प्रकार देखते हैं?

भारत की जनगणना 2001 के आँकड़े कहते हैं कि इस देश में 122 बड़ी भाषाएँ एवं 1599 अन्य सहजीजी भाषाएँ हैं। ऐसे में भाषा के स्तर पर इस देश को एकजुट रखना एक चुनौती भरा काम है। राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी यही काम करती आ रही है। आजादी के बाद संविधान के अधिदेशों के अनुसार केंद्रीय हिंदी निदेशालय की स्थापना इन्हीं उद्देश्यों के लिए हुई। निदेशालय तब से लेकर आज तक इस दिशा में कार्य करता आया है और इसने कई पड़ावों को पार किया है। सुदूर उत्तर-पूर्व से लेकर हिंदी के लिए कठिन माने जाने वाले द्रविड़ प्रदेश में इसके प्रचार-प्रसार का कार्य जिस सक्रियता से केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने किया है, वह उत्साह जगाता है। भारत सरकार के इस महत्त्वपूर्ण संगठन ने छात्रों को हिंदी सिखलाने, लेखकों को प्रशिक्षित करने से लेकर पुरस्कारों द्वारा उनके उत्साहवर्धन जैसे अविस्मरणीय कार्य किए हैं। केंद्रीय हिंदी निदेशालय से आर्थिक सहायता लेने वाले स्वैच्छिक हिंदी संगठनों ने तो गाँव-गाँव में हिंदी की अलख जगाई है।

आपके निदेशक रहते हुए केंद्रीय हिंदी निदेशालय का स्थापना दिवस अभी हाल में ही समारोहपूर्वक मनाया गया। आप अपनी दृष्टि से इस संगठन के भविष्य का मूल्यांकन किस प्रकार करेंगे?

हाँ, मेरा व्यक्तिगत विचार है कि संस्था अपना कामकाज तो करे ही, साथ ही इसके कामकाज के बारे में लोगों को भी पता चले, विशेषकर हिंदीभाषी प्रदेशों में, जहाँ केंद्रीय हिंदी निदेशालय की गतिविधियाँ सीमित हैं। साथ ही किसी भी संगठन का स्थापना दिवस उसकी गरिमा को रेखांकित करता है और उसे ऊर्जावान बनाता है। मेरी दृष्टि में केंद्रीय हिंदी निदेशालय को अभी बहुत काम करना

शेष है। अतः यह भी आवश्यक है कि अधिकाधिक लोग इससे जुड़ें। मुझे जिन हिंदीतरभाषी प्रदेशों का दौरा करने का अवसर मिला, वहाँ मैंने देखा कि निदेशालय के कार्यों के प्रति लोगों में गहरी आस्था है और अब ऐसे लोगों की संख्या बढ़ रही है जो केंद्रीय हिंदी निदेशालय से जुड़ने के बाद हिंदी भाषा लिखने और पढ़ने में अपनी प्रशंसनीय दक्षता विकसित कर रहे हैं।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय मुख्य रूप से किन योजनाओं का संचालन करता है? योजनाओं के कार्यान्वयन में पूर्ण पारदर्शिता के लिए क्या उपाय किए जाते हैं?

आपसे अभी चर्चा हुई कि केंद्रीय हिंदी निदेशालय के कामकाज का दायरा बड़ा है। इसमें स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं को अनुदान जारी करने, पत्राचार पाठ्यक्रम संचालित करने, शिविरों में हिंदीतरभाषी लेखकों के प्रशिक्षण, हिंदी में लेखन को पुरस्कारों के माध्यम से प्रोत्साहित करने, समसामयिक विषयों पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन करने, विविध प्रकार के कोशों का निर्माण करने जैसे कार्य शामिल हैं। जहाँ तक पारदर्शिता का प्रश्न है, मैं आपको आश्वस्त करता हूँ कि योजनाओं का ढाँचा और उसकी देखरेख की प्रणाली इस प्रकार से तय की गई है कि इसमें किसी भी प्रकार के अनपेक्षित प्रभाव की संभावना नहीं है। उदाहरण के लिए पुरस्कारों की योजना को देख सकते हैं। इसमें त्रि-स्तरीय मूल्यांकन समिति कार्य करती है। सर्वोच्च स्तर पर पुरस्कारों का निर्धारण स्वयं मानव संसाधन विकास मंत्री द्वारा किया जाता है। स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं को अनुदान जारी करने वाली समिति में प्रख्यात हिंदी विद्वान् सम्मिलित होते हैं और उनका नाम-निर्धारण भी स्वयं मंत्री जी द्वारा ही किया जाता है। आपके लिए यह जानना दिलचस्प हो सकता है कि इस समिति के सरकारी सदस्यों में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास का प्रतिनिधित्व भी होता है। मुझे प्रसन्नता है कि केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने अपनी योजनाओं का सुचारु संचालन किया है और इससे देश लाभान्वित हुआ है।

हिंदी वैश्विक बाजार की भाषा बन चुकी है। केंद्रीय हिंदी निदेशालय हिंदी की इस विकास यात्रा में अपनी भूमिका किस प्रकार देखे?

हिंदी के जिस विस्तृत स्वरूप को हम देख रहे हैं, यह हिंदी के लिए कार्य करने वाले समर्पित लोगों के कारण है। केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने हिंदी के प्रचार-प्रसार के साथ इस भाषा के आधुनिकीकरण के लिए भी निरंतर प्रयास किए हैं। हिंदी की लिपि को मशीन फ्रेंडली बनाने के लिए केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने देवनागरी लिपि का मानकीकरण किया। यह एक ऐतिहासिक काम था। इससे न सिर्फ हिंदी को की बोर्ड के अनुरूप बनाने में मदद मिली बल्कि यह उन लोगों के लिए वरदान बना जो हिंदी भाषा सीखने के क्रम में लिपि की जटिलताओं में फँस जाते थे।

क्या निकट भविष्य में केंद्रीय हिंदी निदेशालय नई योजनाओं पर कार्य करने पर विचार कर रहा है?

केंद्रीय हिंदी निदेशालय में स्वयं अपने स्तर पर एवं मंत्रालय के स्तर पर इसके कामकाज की समीक्षा होती रहती है। दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन में पारित प्रस्तावों से भी केंद्रीय हिंदी निदेशालय का उत्तरदायित्व बढ़ा है। केंद्रीय हिंदी निदेशालय की कोश योजना में भी हिंदी कहावत कोश, लोकोक्ति एवं मुहावरा कोश आदि पर काम शुरू करने की योजना बन रही है।

आप हिंदी और सिंधी दोनों भाषाओं की शीर्ष संस्थाओं को देख रहे हैं। किस प्रकार से आप इसे एक साथ संभव बनाते हैं?

मेरे लिए भाषा का कार्य नौकरी की तरह नहीं है बल्कि एक मिशन की तरह है। दोनों भाषाओं के लिए काम करने को मेरी अंतरात्मा स्वयं प्रेरित करती है। पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी का वह उत्तर आज तक मेरे मन पर अंकित है, जब उनसे पूछा गया था कि आप सिंधी को संविधान में लाने को इतने कृतसंकल्प क्यों हैं? तो उन्होंने कहा था कि हिंदी मेरी माँ है और सिंधी मेरी मौसी। भारत की भाषाओं का यह बहनापा ही मुझे ऊर्जा देता है।

हिंदी और सिंधी साहित्य में क्या अंतर है?

दोनों ही भाषाओं का अपना-अपना क्षेत्र है। अपने विचार व साहित्यकार हैं, जो विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों को प्रस्तुत करते हुए आगे बढ़ते हैं। आखिर चाहे किसी भी भाषा का साहित्य हो, उसे विचार तो समाज से लेने होते हैं और इसलिए हम देखते हैं कि सिंध के संत बच्चूमल दाता रमाणी साहब या संत सामी के विचारों का अद्‌भुत साम्य तमिल के विख्यात कवि संत तिरुवल्लुवर के विचारों से है। जबकि इनके बीच 2000 वर्षों का कालावरोध है। ठीक इसी प्रकार हिंदी और सिंधी में भी कई समानताएँ हैं। कोई भी साहित्य हो, वह समाज का दर्पण ही होता है।

भाषा के प्रचार-प्रसार में लोगों तक पहुँचना महत्त्वपूर्ण है। इस कार्य में सोशल मीडिया के योगदान को आप किस प्रकार देखते हैं?

सोशल मीडिया किसी भी भाषा के उत्थान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भाषा का उन्नयन और विकास उसके प्रयोग, रोजगार के अवसर एवं अनुवाद की उपलब्धता पर बहुत कुछ निर्भर करता है। इस दिशा में सोशल मीडिया अग्रणी भूमिका निभा रहा है।

आप स्वयं लिखते हैं। अपने अब तक के प्रकाशित एवं प्रकाशाधीन लेखन के बारे में कुछ बताएँ।

मूल लेखन, अनुवाद और संपादन मिलाकर कुल बारह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। सिंधी कहावतों का मैंने सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भाषावैज्ञानिक अध्ययन किया है और इसे दिल्ली सरकार द्वारा पुरस्कृत भी किया गया है। एक यात्रा-वृत्तांत 'सरयू से सिंध तक' नाम से आने वाला है और प्रसन्नता की बात है कि इसे एनबीटी ही प्रकाशित कर रहा है। भारतीय कहावतों में नारी चित्रण का जो अध्ययन मैं कर रहा हूँ, उस पर आधारित शोध-पत्र भी संविधान स्वीकृत 22 भाषाओं में उपलब्ध होंगे।

संवाद और संप्रेषण का सशक्त माध्यम : पत्र-साहित्य (प्राचीनता और वर्तमान के विशेष संदर्भों में)

जिन अर्थों में मनुष्य को सामाजिक प्राणी माना जाता है और जिन अर्थों में उसे सृष्टि का सुंदरतम् रहस्य माना जाता है, उन अर्थों की पुष्टि के लिए केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि मनुष्य संप्रेषण में विश्वास करता है। संप्रेषणधर्मा होने के कारण मनुष्य समाज की सशक्त परंपरा का भी सृजन करता है। अपने भाव-संवेदनों का आदान-प्रदान करना मनुष्य का मूल स्वभाव है। इसी कारण मनुष्य एक संगठित इकाई के रूप में परिवार, कुल, वंश, मुहल्ला, समाज, जनपद, ग्राम आदि के द्वारा राज्य और राष्ट्र की संकल्पना का निर्माण करता है। अगर मनुष्य की संवेदनशीलता का मूल्यांकन करें तो एक बात बहुत स्पष्ट होकर सामने आती है कि सृष्टि के आरंभ से ही मनुष्य ने 'संकेतों' के माध्यम से अपनी संवेदनाओं का आदान-प्रदान सुनिश्चित किया। इसी कारण भाषा वैज्ञानिक यह स्वीकारते हैं कि मनुष्य की आरंभिक भाषा 'सांकेतिक भाषा' थी, यह निर्विवाद सिद्धांत है। इस परंपरा का क्रमशः विकास होता गया और संकेतों की भाषा धीरे-धीरे लिपि और वाणी में बदलती गई। संवेदना के आदान-प्रदान की विकास-प्रक्रिया पर चर्चा न करके सीधे-सीधे यह स्थापित किया जाना उचित होगा कि भाषा के विकास काल एवं लिपियों के स्तरीकरण के उपरांत 'संप्रेषण' की प्रक्रिया बदलती गई।

डॉ. राजेश चंद्र पांडेय

शिक्षा : एम.ए., पी-एच.डी.

संप्रति : गत पंद्रह वर्षों से महाविद्यालय में प्राध्यापक

कृति : 'शोध धारा' त्रैमासिक पत्रिका के संपादक, कई पुस्तकों के लेखक, देशभर में सौ से अधिक गोष्ठियों में वक्ता, पचास से अधिक शोध-पत्र प्रकाशित।

संपर्क : दयानंद वैदिक (पी.जी.) महाविद्यालय, उरई (जालौन) (उ.प्र.)

9198204835, 9415592698,
pandeyrajesh08@yahoo.com

जहाँ तक पत्र-लेखन की परंपरा के आरंभ का प्रश्न है तो यह बात निर्विवाद रूप से स्वीकार करनी चाहिए कि जब से मनुष्य ने मिट्टी के बर्तन, आग और आवास के लिए घर का निर्माण सुनिश्चित किया तभी से लेखन की इस विधा का भी सूत्रपात किया। प्राचीन ग्रंथों, शास्त्रों एवं आख्यानों में इस बात का प्रचुर प्रमाण मिलता है कि मानव सभ्यता के प्राचीनतम समय में ही लेखन कला का प्रादुर्भाव हो चुका था। इस बात की चर्चा प्रायः अनेक ग्रंथों में मिलती है कि पहले मानव सभ्यता लेखन के लिए शिलापत्र, भोजपत्र, ताम्रपत्र, वृक्षों की पत्तियाँ आदि विविध प्रकार के माध्यमों का प्रयोग किया करती थी। इसी माध्यम में एक और महत्त्वपूर्ण माध्यम लेखन के रूप में प्रयोग किया जाता था—'मिट्टी का फलक'। इतिहासकार इस बात को निर्विवाद रूप से स्वीकार करते हैं कि प्राचीन काल में लोग 'मिट्टी के फलक' को पत्र लेखन/संदेश प्रेषण के लिए प्रयुक्त करते थे। इस संदर्भ में इतिहासवेत्ता यज्ञदत्त शर्मा का कथन ध्यान देने योग्य है, उन्होंने लिखा है कि— "संसार के विभिन्न भागों में लिपियों के आविष्कार के बाद पत्रों का आदान-प्रदान प्रारंभ हो गया था। लेखन सामग्री तथा संचार साधनों की सुविधा आज की तुलना में शतांश भी नहीं थी, किंतु पत्र-प्रेमी मानवों को कोई भी बाधा दमित न कर पाती थी। ताम्रपत्र, रेशमी वस्त्र तो बहुत बाद में आए; लेकिन विवेकशील और आविष्कार कुशल मनुष्यों ने 'गीली

मिट्टी के फलकों' पर ही अक्षर खोदकर पत्र लिखे थे। इन फलकों पर पत्र लिखकर उन्हें पकाया जाता था और गंतव्य तक भेजा जाता था।"[1] इस बात की पुष्टि कोंपटन के 'सचित्र विश्वकोश' से भी होती है। उसने भी अपने विश्वकोश में 'मिट्टी के फलकों' पर लिखे गए प्राचीन काल के पत्रों की विस्तार से चर्चा की है।

भारतीय साहित्य में भी इस बात के प्रचुर प्रमाण हैं कि पत्र संदेशों/संवेदनाओं के वाहक के रूप में प्रयुक्त किए जाते थे। संस्कृत साहित्य इस भाव-बोध का सजग और गंभीर दस्तावेज है। इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि प्राचीनतम साहित्य में

पत्र-शैली का प्रयोग अधिकतम प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए ही हुआ है। यद्यपि कि संदेश प्रेषण का भाव भी इसमें कम नहीं है। दूरस्थ प्रिय के पास संदेश भेजने की व्यवस्था इन पत्रों के माध्यम से संपन्न होती थी। इस प्रकार के संदेशों में मनोगत भाव, जीवन की आकुल दशा, शारीरिक दुर्बलता आदि की अभिव्यक्ति होती थी। महाकवि कालिदास की कृति 'कुमार संभवम्' के प्रथम सर्ग में पत्र लेखन की परंपरा का परिचय मिलता है। 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' में भी पत्र लेखन-प्रेम पत्र (मदन लेख) का उल्लेख मिलता है। शकुंतला की सखियाँ प्रियंवदा एवं अनुसूइया शकुंतला को प्रेरित करती हैं कि वह दुष्यंत को पत्र लिखे।[2] यद्यपि कि ये संदर्भ नाटक/साहित्य का अंश मात्र हैं; फिर भी इसका महत्त्व इस बात में है कि इस विधा का प्रभाव हजारों वर्ष पूर्व भी रहा है। महाकवि बाण की प्रसिद्ध गद्य कृति 'कादंबरी' में भी महाश्वेता अपने प्रणय का परिचय देने हेतु कुमार पुंडरीक को तमाल पत्र पर मदन लेख (प्रेम पत्र) प्रेषित करती है।[3]

पत्र प्रेषण के इन संदर्भों को दृष्टिगत रखने पर एक बात यह स्पष्ट होती है कि प्राचीन काल में यह विधा अत्यंत सशक्त थी। उस समय संचार माध्यम भले ही विकसित न रहे हों, किंतु जिन माध्यमों का प्रयोग पत्र प्रेषण हेतु किया जाता था वे प्रासंगिक हैं। हंस, कबूतर, पशु-पक्षी आदि प्रियजनों तक संदेशवाहक का कार्य करते थे। महाभारत के 'नलोपाख्यान' के अध्ययन से ज्ञात होता है कि हंसों के माध्यम से नल एवं दमयंती अपने प्रेम को प्रगट करते थे।[4] पशु-पक्षियों के अतिरिक्त प्राचीन काल में राहगीरों, घुड़सवारों आदि के माध्यम से भी पत्र-संप्रेषण के प्रमाण मिलते हैं। 'श्रीमद्भागवत' में भगवान श्रीकृष्ण के पास अपना प्रणय-पत्र भेजने के लिए रुक्मिणी एक विप्र को माध्यम बनाती है और उसी के द्वारा प्रणय-उद्गार व्यक्त करती है।[5] ये सारे संदर्भ इस बात की पुष्टि करते हैं कि प्राचीन काल में पत्रों का प्रेषण दूतों के माध्यम से होता था। आलोचकों ने दूतों द्वारा प्रेषित 'संदेश काव्यों' को ही 'दूत काव्य' की संज्ञा दी है।[6] महाकवि कालिदास का 'मेघदूत' 'दूत काव्य' भी कहा जा सकता है। बाण ने 'हर्ष चरित्र' में दूत अथवा पत्रवाहक को 'लेखकारक' की संज्ञा दी है। इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि पत्रवाहक अथवा दूत को एक विशेष प्रकार के वस्त्र पहनाए जाते थे।[7] वर्तमान भारतीय डाक व्यवस्था में इसका अंश आज भी देखने को मिलता है।

पत्र प्रेषण की परंपरा यद्यपि प्राचीन काल से ही मिलती है किंतु डाक व्यवस्था को मध्ययुग में व्यवस्थित रूप देने का श्रेय शेरशाह सूरी (1486-1545 ई.) को है, जिसने पहली बार 'डाक नीति' का निर्माण किया था। हालाँकि यह व्यवस्था मध्ययुग में भी सीमित ही रही और सुदृढ़ रूप से डाक-व्यवस्था की नींव लॉर्ड डलहौजी के शासनकाल में पड़ी। डलहौजी ने पहली बार व्यवस्थित रूप से डाकघरों एवं पोस्टकार्डों, पोस्ट बॉक्सों आदि की शुरुआत की।[8]

हिंदी साहित्य में पत्र लेखन की परंपरा—हिंदी पत्र लेखन की परंपरा का प्रस्थान बिंदु हमें प्राचीन काव्य में दिखाई पड़ता है। डॉ. प्रेम चंद गुप्त ने कहा है—"प्राचीन काल में पद्य की प्रधानता और गद्य की गौड़ता रही। राजनीति, वैद्यकी, ज्योतिष, गणित आदि व्यावहारिक और वैज्ञानिक विषय भी उस समय पद्य में व्यक्त किए जाते थे; यहाँ तक कि पत्र व्यवहार में भी पद्य का ही प्रयोग होता था।"[9] इस दृष्टि से यदि हम विचार करें तो आदिकालीन 'रासो ग्रंथों' की ओर हमारा ध्यान अवश्य पहुँच जाता है। 'संदेश रासक' में संदेश परंपरा का पूर्णतया निर्वहन किया गया है। पत्र लेखन का उत्कृष्ट एवं स्पष्ट उदाहरण 'पृथ्वीराज रासो' के 'पद्मावती समय' नामक सर्ग में द्रष्टव्य है। 'पद्मावती समय' के एक घटनाक्रम में यह वर्णित है कि पृथ्वीराज के पास संदेश लेकर पद्मावती का तोता आठ प्रहर में ही दिल्ली पहुँच जाता है[10]—

लै पत्री सुक यौं चल्यौ, उड्यो गगन गहि बाव/ जहँ दिल्ली प्रथिराज बर, अठ्ठ जाम में जाव।।[11]

लोकगीतों में भी प्रेमी-प्रेमिकाओं का संदेश पत्रों के आदान-प्रदान के माध्यम से एक दूसरे तक पहुँच जाया करता था। लोक साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् देवेंद्र सत्यार्थी ने अपनी पुस्तक 'बाजत आवै ढोल' में पत्र लोकगीतों में पत्रों के प्रयोग का उल्लेख किया है।[12] कबीर के साहित्य में पत्र लेखन की परंपरा नहीं है, क्योंकि उनकी स्पष्ट सोच थी कि "प्रीतम को पतियाँ लिखूँ, जो कहूँ होय विदेस। तन में, मन में, नैन में ताको कहा संदेस।"[13]

हाँ, जायसी के यहाँ पत्र-प्रेषण की परंपरा तो नहीं किंतु संदेश प्रेषण की व्यवस्था अवश्य है। नागमती जब अपने विरह से ऊब जाती है तो पूरी प्रकृति को माध्यम बनाकर संदेश भेजती है— "पिय सो कहेऊ संदेशणा हे भँवरा हे काग"। ध्यातव्य है कि सभी जीव-जंतु उपालंभ या संदेश का माध्यम बनते हैं। गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' में भी पत्र-व्यवहार का उल्लेख है। महाराज जनक द्वारा राजा दशरथ को 'राम-विवाह-प्रसंग' में प्रेषित पत्र का संदर्भ मिलता है, जिसे महाराज दशरथ ने राज सभा में खड़े होकर पढ़ा था और हर्ष विभोर हो गए थे—

करि प्रनामु तिन्ह पाती दीन्ही, मुदित महीप आपु उठी लीन्ही
बारि बिलोचन बाँचत पाती, पुलक गात आई भरि छाती।[14]

'विनय पत्रिका' भी प्रभुभक्ति का पत्रात्मक दस्तावेज ही है। हाँ, इसमें कवि ने दरबारी पद्धति का अनुसरण जरूर किया है। सूर की

गोपियाँ वैसे तो कृष्ण को मौखिक संदेश ही अधिकतर भेजती हैं– मासे खूटी, कागद जल भीज्यौ, सरदौ आगि जरै; लेकिन 'भ्रमरगीत सार' में लिखित संदेश का भी उल्लेख मिलता है– निरखत अंग स्याम सुंदर के बारि-बारि लावत छाती /लोचन जल कागद मसि मिलि कै ह्वै गई स्याम-स्याम की पाती।।[15]

पाती लिखी आप कर मोहन, ब्रजवासी सब लोग/मात जसुदा पिता नंद जू, बाढ़ौ बिरह बियोग।।[16]

हालाँकि भ्रमर ने जो संदेश ब्रज और मथुरा के बीच आदान-प्रदान किया, वह तो अद्वितीय ही है। एक प्रसंग मिलता है कि जब मीराबाई पर अत्याचार की पराकाष्ठा हो गई तब मीरा ने तुलसीदास जी को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने अपनी पीड़ा को प्रकट किया है–

स्वस्ति श्री तुलसी कुल भूषण दूषण हरन गोसाई।
बारहि बार प्रनाम करहुँ अब हरहुँ शोक गोसाईं।।[17]

तुलसीदास जी ने उत्तर दिया और कहा–

जाके प्रिय न राम वैदेही, सो नर तजहि।
कोटि बैरी सम, जदपि परम सनेही।।[18]

ब्रजभाषा में पत्रों की संख्या तो न के ही बराबर है। 16वीं सदी के उत्तरार्द्ध में राधा बल्लभ संप्रदाय के हित हरिवंश जी द्वारा जूनागढ़ में विद्वान् श्री विट्ठल दास को लिखी गई दो 'श्री मुख पत्रियों' की चर्चा कुछ ग्रंथों में अवश्य मिलती है। हिंदी की प्राचीन परंपरा का सर्वाधिक रोचक और आकर्षक पत्र हमें बुंदेली भाषा में महाराजा छत्रसाल के समय में मिलते हैं। संवत् 1783 में सवाई जयसिंह के नाम लिखे गए महाराज छत्रसाल के पत्र उल्लेखनीय हैं।[19] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को शांति निकेतन में 'पत्र कौमुदी' की एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई एवं इसमें पत्र लेखन के नियमों की सोदाहरण चर्चा की गई।[20] ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रारंभ में नागरी अक्षरों में लिखी गई पुस्तक 'नेशनल आर्काइव' नई दिल्ली में सुरक्षित है। इसमें से 145 पत्र डॉ. धीरेंद्र वर्मा और लक्ष्मीशरण वार्ष्णेय द्वारा संपादित हैं, जो प्राचीन हिंदी पत्र-संग्रह में संकलित हैं।[21] प्राचीन युग से लेकर अब तक जो प्रचुर हिंदी पत्र साहित्य प्रकाश में आया है, उसको चार वर्गों में बाँटा जा सकता है–

(1) भारतेंदु पूर्व-युगीन पत्र साहित्य
(2) भारतेंदु युगीन पत्र साहित्य
(3) द्विवेदी युगीन पत्र साहित्य
(4) वर्तमान युगीन पत्र साहित्य

(1) भारतेंदु पूर्व युग में पत्र साहित्य एक दस्तावेज जैसा सिद्ध होता था। इस युग में राजनीति समाज, व्यवस्था, धार्मिक वृत्ति और भाषा विकास की महत्ता थी। इसीलिए इस युग में स्वच्छंद, स्वतंत्र विचारों का प्रवाह तंत्र नहीं था। पत्र एक नियम सिद्धांत के आधार पर उद्धृत हुआ करते थे। समय, काल, वातावरण के अनुरूप इस युग के पत्रों को दो भागों में बाँटा जा सकता है–(अ) प्रशासनिक पत्र, (ब) व्यक्तिगत पत्र।

(2) भारतेंदु युग का नाम पुनर्जागरण एक सरल नाम नहीं था। वास्तव में समाज पुनः जागृत हुआ, क्योंकि उस समय भारत ही नहीं अपितु संपूर्ण संसार एक चिर निद्रा के बाद जग रहा था। राजा राम मोहन राय, आर्य समाज के संस्थापक दयानंद सरस्वती तथा राजनीतिक नेता सुरेंद्र नाथ, दादा भाई नैरोजी, ईश्वर चंद विद्यासागर तथा विदेश में साम्यवाद के संस्थापक कार्ल मार्क्स, मनोविश्लेषणवाद के फ्रायड आदि ने इस युग की गरिमा बढ़ाई। यद्यपि भारतेंदु युग में पत्रों का कोई स्वतंत्र संग्रह न था अपितु पत्र-पत्रिकाओं में साहित्यकारों एवं अन्य के पत्र अवश्य प्रकाशित हुआ करते थे।[22]

हिंदी साहित्य में सर्वप्रथम पत्र लेखन विधा भारतेंदु जी द्वारा प्रारंभ की गई। हिंदी में 'नए चाल के पत्र' इन्होंने ही चलाए। भारतेंदु जी की पुस्तक 'प्रशस्ति संग्रह' अथवा 'तत्त्व बोध' में भारतेंदु जी की सूझबूझ का पत्र संग्रह मिलता है।[23] भारतेंदु मंडल के साहित्यकारों में प्रेमघन जी 'आनंद कादंबिनी' के संपादक थे। डॉ. रामचंद पुरोहित ने अपने 'प्रेमघन एवं उनका कृतित्व' शीर्षक शोध प्रबंध में उनके पत्र व्यवहार को प्रकाशित किया है।[24] शोध प्रबंध में जो पत्र सम्मिलित किए गए वह हिंदी पत्र साहित्य के अलंकारिक शैली में लिखे गए विशिष्ट स्थान प्राप्त पत्र हैं। प्रतापनारायण मिश्र जी द्वारा पत्रों को संग्रहीत करने के कार्य का उल्लेख डॉ. शांति प्रकाश वर्मा ने अपने शोध प्रबंध 'प्रताप नारायण मिश्र की हिंदी गद्य की देन' में किया है। मिश्र जी ने समकालीन साहित्यकारों के नाम इन पत्रों को लिखा था। मिश्र जी द्वारा लिखे गए बालमुकुंद जी को पत्र 'बालमुकुंद गुप्त स्मारक ग्रंथ' में उद्धृत हैं। मिश्र जी ने अपने परम मित्र हरिश्चंद्र जी को 'भारत दुर्दशा' के संदर्भ में पत्र लिखा था।[25] श्रीधर पाठक के संदर्भ में लिखे गए पत्र 'प्रताप नारायण ग्रंथावली' में संगृहित हैं। इसी प्रकार राधाकृष्ण दास, किशोरी लाल गोस्वामी इत्यादि के संदर्भ में लिखे गए पत्रों का उल्लेख 'प्रेमघन और उनके कृतित्व' में मिलता है।[26]

(3) आधुनिक हिंदी साहित्य में द्विवेदी युग का अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। डॉ. रामविलास शर्मा ने इसे नवजागरण का तृतीय चरण माना है।[27] द्विवेदी युग को पत्र साहित्य का विधिवत् रूप से प्रतिष्ठित युग कहना सर्वथा उचित होगा। हिंदी साहित्यकारों के पत्र संग्रह का प्रकाशन सर्वप्रथम 'द्विवेदी पत्रावली' में हुआ है। आचार्य किशोरी दास वाजपेयी के 'द्विवेदी जी और उनके साथी' शीर्षक संस्मरण में प्रेमचंद, निराला, प्रसाद, उग्र से संबंधित पत्र भी संकलित हैं।

आचार्य द्विवेदी के नाम से ही यह युग स्थापित हुआ। वह सुधारवादी व्यक्तित्व थे। वह एक गद्यकार के साथ-साथ उच्च कोटि

के पत्र लेखक भी थे। 'सरस्वती' के संपादक के दायित्व से उन्होंने कई छोटे-बड़े साहित्यकारों को पत्र प्रेषित किए, वह पत्र व्यवहार में अत्यंत नियमित व्यक्ति थे। वे पत्रों की सुरक्षा एवं संग्रह के प्रति अत्यंत सजग रहने वाले व्यक्ति थे। उनके नाम आए हुए सैकड़ों पत्र 'नागरी प्रचारिणी सभा' काशी में सुरक्षित हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण पत्र 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के 'पौराणिक स्तंभ' में प्रकाशित हो चुके हैं। द्विवेदी युग के वरिष्ठ गद्यकार एवं पत्र लेखन में इनका भी नाम अग्रिम श्रेणी में है। यह भी द्विवेदी जी की तरह ही पत्र व्यवहार में कुशल सजग प्रहरी थे। इन्होंने भी पत्रों के लिए एक रजिस्टर ही बना रखा था जिसमें आने वाले पत्रों का विवरण रखते थे।[28] भारतीय संस्कृत के व्याख्याता एवं राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत मैथिलीशरण गुप्त भी पत्र लेखन के सजग प्रहरी थे। इनके कई महत्त्वपूर्ण पत्र 'राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनंदन ग्रंथ' में संगृहीत हैं। इनके द्वारा उग्र जी को लिखे गए तीन पत्र 'फाइल और प्रोफाइल' में प्रसाद जी को लिखे गए 25 पत्र 'प्रसाद के नाम पत्र' में प्रकाशित हुए हैं।[29]

(4) वर्तमान युगीन पत्र साहित्य में हम छायावाद से साहित्यकारों का चयन शुरू करना यथेष्ट मानते हैं। इस युग में मानव जीवन की कल्पना, सौंदर्य चेतना इत्यादि को स्थापित किया गया। प्रेमचंद जी

इस युग के महान उपन्यासकार तो थे ही, साथ ही पत्र लेखन साहित्यकारों की दीर्घा में अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। उसका प्रमाण अमृत राय और मदन गोपाल के द्वारा संपादित स्वतंत्र रूप से संकलित पत्र संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

निराला जी छायावाद के शिव कहे जाने वाले एक ऐसे व्यक्तित्व हैं; जिनके आचरण में आस्था, निष्ठा, ओजस्विता एवं चिंतन स्थापित हैं। ये सभी विशेषताएँ उनके पत्र साहित्य में भी प्रकट होती हैं। उनका विस्तृत पत्र साहित्य राम विलास शर्मा द्वारा संपादित 'निराला की साहित्य साधना भाग-3' में संकलित है। यह हिंदी का अद्वितीय पत्र-संग्रह है। पंत जी छायावाद के आलोक स्तंभ कहे जाते हैं। इनके काव्य में जिस प्रकार सहजता, सरलता प्रस्फुटित होती है, ठीक उसी प्रकार इनके पत्र लेखन में भी अवलोकित होती है। बच्चन जी, प्रसाद जी और निराला जी के नाम से लिखे गए पत्रों का स्वतंत्र संग्रह पंत जी ने संकलित किया है। इसी युग में यशपाल, वासुदेवशरण अग्रवाल, हरिवंश राय बच्चन, माखनलाल चतुर्वेदी, प्रसाद, शिवपूजन सहाय, बाल कृष्ण शर्मा नवीन, जैनेंद्र कुमार के द्वारा लिखे पत्र-संग्रह भी प्राप्त होते हैं जो कि हिंदी साहित्य में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं और हिंदी भाषा को समृद्धशाली बनाते हैं।[30]

आधुनिक युग में साहित्यिक पत्रों के साथ-साथ कुछ ऐसे अन्य प्रसंगात्मक पत्र भी हैं, जिनके माध्यम से भारतीय परिवेश काफी हद तक प्रभावित हुआ है। इसमें जवाहरलाल नेहरू द्वारा इंदिरा प्रियदर्शिनी को लिखा हुआ पत्र 'A letter to his Daughter' एक महत्त्वपूर्ण पत्र-संग्रह है। जय प्रकाश नारायण के पत्र, जो कि 'जे.पी. मूवमेंट' के गंभीर दस्तावेज हैं, काफी महत्त्वपूर्ण संकलन हैं। यदुनाथ थत्ते ने 'जय प्रकाश' नामक बायोग्राफी में इसका उल्लेख किया है। महात्मा गाँधी द्वारा लिखे गए लगभग 2500 पत्र, जो कि 'गाँधी स्मारक निधि' द्वारा एकत्रित हैं, उनका भी भारतीय सामाजिक-राजनीतिक परिवेश में प्रासंगिक स्थान है।

पत्र विधा की प्रासंगिक विशेषताएँ— प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक पत्र साहित्य का मूल्यांकन करने पर कहा जा सकता है कि इस विधा की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हो सकती हैं—

(i) प्रकाशन के लिए व्यक्तिगत रूप का साहित्य है।

(ii) प्रेरक एवं मनोरंजक होने के कारण व्यक्तित्व का रहस्योद्घाटन इससे होता है।

(iii) पत्रों में लेखक के मूल भाव का प्रस्फुटन होता है।

(iv) पत्रों में परस्पर आत्मीयता और मैत्री भाव भी लक्षित किया जा सकता है।

(v) पत्रों में समकालीन घटनाओं की आवृत्ति होती है।

(vi) श्रेष्ठ पत्रों में वार्तालाप की ध्वनि विद्यमान रहती है।

(vii) श्रेष्ठ पत्र अपने युग का गंभीर दस्तावेज होते हैं।

पत्र लेखन जीवन की आत्मीय विधा है। यह मानव जीवन का गंभीर दस्तावेज है। ऊपर के प्रसंगों में पत्र-लेखन एवं उसकी परंपरा का यथासंभव संदर्भों सहित (इसलिए कि प्रामाणिकता बनी रहे) उल्लेख किया गया। स्थानाभाव एवं विस्तार भय से बचते हुए बात को संक्षिप्त रखने की कोशिश की गई है, किंतु कुछ बातें और भी प्रासंगिक हैं; जिनके बिना विषय की चर्चा अधूरी रह जाएगी। पहली बात तो यह कि पत्र लेखन की परंपरा अनादि काल से चली आ रही है। पत्र संवाद का माध्यम रहा, जो कि हमारे सामाजिक होने की बहुत बड़ी और मूल शर्त है। दूसरी बात यह कि किसी भी प्राचीन काल खंड के बोध हेतु इन पत्रों की भूमिका वरेण्य रही है। ये पत्र दरअसल साहित्य की एक सशक्त विधा के रूप में हमारे सामने आते हैं; जिनके माध्यम से हमें युगबोध में सुगमता महसूस होती है। इस बात को ध्यान में रखना होगा कि 'साहित्य और साहित्यकार हमें वसुदेव की तरह डलिया में रखकर एक युग से दूसरे युग तक इतनी सुगमता से

पहुँचा देते हैं कि हमें पता ही नहीं चलता है कि इतना बड़ा संक्रमण कैसे बीत गया।' तीसरी बात यह कि पत्र साहित्य वस्तुतः मानव मन का वह दस्तावेज है, जिसके माध्यम से किसी युग का मूल्यांकन किया जा सकता है। ध्यान रखना होगा कि 'किसी भी देश के इतिहास का मूल्यांकन करते समय, उसकी जातीय एवं सांस्कृतिक अस्मिता का विश्लेषण करते समय, उसके मिथकों को निर्धारित करते समय उस देश के साहित्य और साहित्य की विविध विधाओं को अनदेखा नहीं किया जा सकता है।' इसी प्रसंग में यह भी ध्यातव्य है कि 'भारतीय परंपरा में इतिहास के व्यापक विश्लेषण, साम्राज्यवाद और आजादी की संघर्ष गाथा के मूल्यांकन एवं निर्धारण का सबसे बड़ा और मूल आधार पत्र-साहित्य ही है', जो हमें इन कालखंडों की पूरी जानकारी प्रदान करता है।

दरअसल पत्र लेखन संवेदना से भरपूर होना चाहिए ताकि वह संप्रेषण को सफल बना सके। आधुनिक युग में पत्र लेखन की परंपरा यद्यपि बहुत सशक्त रही, लेकिन 21वीं शताब्दी के आरंभ से ही इस विधा का जैसे लोप होता चला जा रहा है। बिना संकोच के कहा जा सकता है कि बीसवीं शताब्दी का अंतिम दशक जिन बहुत सारे सामाजिक परिवर्तनों का कारण बना उसमें एक परिवर्तन यह भी हुआ कि पत्र लेखन की परंपरा धीरे-धीरे विलुप्त होने लगी। संचार क्रांति के आह्वान के कारण हमने दैनिक जीवन में पत्राचार को बंद कर दिया। इंटरनेट, मोबाइल, दूरभाष आदि जैसी सुविधाओं ने हमें प्रगति चाहे जितनी दे दी हो; लेकिन हमसे लेखन की एक महत्त्वपूर्ण शैली पत्र लेखन अवश्य छीन ली। हमने अपने को विज्ञानजीवी या विज्ञान धर्मा बना लिया। विवश होकर यह कहना ही पड़ता है कि 'विज्ञान ने हमें प्रगति तो दी लेकिन हमसे हमारी स्मृति छीन ली, हमारा काल बोध छीन लिया और हमें स्मृतिजीवी या कालजीवी की जगह यंत्रजीवी बना दिया।' हम अपने से दूर होते चले जा रहे हैं। हमारी वास्तविकता और हमारे विचार अब संप्रेषणधर्मी नहीं रहे अपितु आत्मकेंद्रित या मौनजीवी हो गए हैं। पत्र लेखन तो बहुत दूर की बात है, अब तो पत्र के बारे में सोचना भी संभव नहीं रह गया है। दरअसल आधुनिकता की व्याख्या करते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि हमें मिला तो बहुत कुछ मगर सब कुछ बेपेंदी का—आजादी मिली लेकिन स्वायत्तता नहीं मिली; भाषा मिली लेकिन अभिव्यक्ति की शक्ति नहीं मिली; विज्ञान मिला किंतु स्मृति लुप्त हो गई और अब तो हम यंत्रजीवी ही हो गए हैं।

अंत में केवल यही कि पत्र लेखन अब सिमटकर एक रस्म की तरह हो चुका है, जिसके बारे में सामाजिक जीवन में शायद ही मनुष्य

कभी-कभी सोचता है। अब तो पत्र लेखन केवल कार्यालयों तक ही सिमटकर रह गया है। अब पत्राचार की बात करते समय केवल कार्यालयीन पत्राचार ही दिमाग में आता है, वही पाठ्यक्रमों में पढ़ाया जाता है। व्यक्तिगत पत्राचार तो हिंदी के पाठ्यक्रमों में न तो कभी सम्मिलित हो पाया और अब शायद इसकी संभावना लगभग समाप्त ही हो गई है। उम्मीद है कि आज की पीढ़ी शायद फिर से पत्र-लेखन को संवाद और संवेदना का सशक्त माध्यम बनाएगी और अपने को संप्रेषित करने के लिए इस विधा को पुनर्जीवित करेगी।

संदर्भ-सूची

1. शर्मा, रामकुमार; आदर्श पत्र लेखन की परंपरा, 1974, पृ.12
2. पांडेय, रामतेज; 'संस्कृत हिंदी व्याख्या—अभिज्ञान शाकुंतलम्' अंक 3, पृ.177
3. देव, पंडित मोहन; महाश्वेता वृत्तांत—कादंबरी, पृ.504
4. शास्त्री, पंडित रामचंद्र; टीकाकार नलोपाख्यान—महाभारत पृ.93
5. श्रीमद्भागवत, दशमस्कंध, अध्याय-52, श्लोक 3744
6. रामकुमार; संस्कृत के संदेश काव्य, 1963 पृ.07
7. पाठक, जगन्नाथ; व्याख्याकार हर्षचरितम् (उल्लास-2) पृ.89-90
8. भार्गव, डॉ. यश; आधुनिक भारत, 1970, पृ.186
9. तिवारी, डॉ. कैलाश चंद्र; हिंदी गद्य साहित्य का विकास, 1966, पृ.32
10. भारत, सरोज; संपादक पृथ्वीराज रासो के दो अध्याय, पृ.178
11. वही
12. सत्यार्थी, देवेंद्र; बाजत आवै ढोल, 1952, पृ.78-79
13. सिंह, पुष्पपाल; कबीर-साखी-समीक्षा, पृ.90
14. तुलसीदास, गोस्वामी; श्रीरामचरितमानस, (संवत् 2011) बालकांड, गीता प्रेस पृ.294
15. मनमोहन, डॉ. गौतम; संपादक सूर सारावली, 1970, पृ.95-96
16. वही
17. डॉ. प्रभात, मीराबाई, पृ.215
18. वही
19. सिंह, महेंद्र प्रताप; संपादकः ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल
20. विशाल भारत, 200 वर्ष पुराने खड़ी बोली के पत्र (अप्रैल 1940) पृ.26
21. प्राचीन हिंदी पत्र संग्रह, (1959), पृ.09
22. प्रशस्ति संग्रह, भारत कला भवन बनारस की प्रति, पृ.12
23. वही
24. प्रेमघन और उनका कृतित्व, 1976, परिशिष्ट-2, पृ.07
25. प्रताप नारायण मिश्र की हिंदी गद्य को देन (1970) परिशिष्ट-4, पृ.479
26. प्रताप नारायण मिश्र ग्रंथावली-1, पृ.74
27. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, 1977, पृ.15
28. बालमुकुंद गुप्त स्मारक ग्रंथ, 1950, पृ.24
29. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनंदन ग्रंथ, 1959, पृ.330
30. जैनेंद्र के विचार (द्वितीय संपादन) 1977, पृ.181

संकट

"बड़े ऊँचे आसन पर बैठी हो? आज तुम्हें मुझसे डर नहीं लग रहा?" ठूँठ ऊँचे तने पर बैठी पूसी से टॉमी ने पूछा।

"क्यों? डर क्यों लगेगा भला?" पूसी ने पूरी हिम्मत से जवाब दिया।

"हूँ...!" टॉमी सोचने लगा। फिर पूछा—"तुम इस जंगल में अकेली कैसे? तुम्हारी माँ कहाँ है?"

"वह अपने भाई-भतीजों से मिलने गई है। बहुत दिनों से कह रही थी...चलो उनसे मिलकर आते हैं। जंगल कट रहे हैं न? पता नहीं, फिर शायद मिलें, न मिलें।" पूसी ने टॉमी की आँखों में आँखें डालते हुए मन की बात बताई। उसकी आँखों में आँसू थे।

"हूँ...।" अपनी आँखें मींचते हुए टॉमी ने चेहरा दूसरी ओर घुमा लिया, ताकि उसकी आँखों का गीलापन पूसी न देख पाए।

"आज तो तुम भी बड़े शांत हो! पहले तो हमें देखते ही दौड़ पड़ते थे...आहार बनाने को! आज इतने संजीदा क्यों हो? बात क्या है भाई?" पूसी ने अपनी जिज्ञासा जाहिर की।

"नहीं...वो...बात ये है कि...मैं सोच रहा था कि क्यों, कब तक और किसलिए हम सभी एक-दूसरे पर हमला कर अपनी ताकत से अपना ही वजूद खतरे में डालते रहेंगे? इन मनुष्यों को तो तुम देख ही रही हो...कैसे वे आपस में मानसिक, शारीरिक और वाचिक हिंसा कर अपनी ही पहचान मिटाने पर तुले हुए हैं?" टॉमी ने अपनी चिंता जताई।

"हाँ भाई। तुम ठीक कह रहे हो।" पूसी ने भी उसकी बातों से सहमति जताते हुए पूछा—"तब क्या किया जाए? यह संकट तो हम पर भी भारी पड़ने वाला है।"

टॉमी कुछ देर सोचता रहा, फिर बोला—"देखो, मैं चाहता तो तुम्हें आसानी से अपना ग्रास बना सकता था। मगर नहीं। आखिर तुम भी तो इसी खाद्य शृंखला का हिस्सा हो। तुम्हारी प्रजाति का अस्तित्व बचाने के लिए जरूरी है कि मैं अपना विचार बदलूँ।" टॉमी ने पूसी को समझाने का प्रयास किया।

पूसी को टॉमी की बात कुछ-कुछ समझ में आने लगी थी। तभी उसे मनुष्य की याद आई—"लेकिन मनुष्य तो...!" पूसी चिंतित हो गई। ".....मनुष्य! वे इस धरती पर सबसे बेवकूफ जीव हैं।"—टॉमी ने गुस्से में दाँत पीसते हुए कहा—"पता नहीं अब आगे क्या होगा...हमारा, तुम्हारा, इस प्रकृति का, इस सृष्टि का....?"

आसन्न संकट की कल्पना से अचानक दोनों शांत हो गए। वीराना अब उन्हें बुरी तरह डराने लगा था।

विजयानंद विजय

जन्म तिथि : 1 जनवरी 1966

शिक्षा : एम.एस-सी.; एम.एड्.

संप्रति : अध्यापन (राजकीय सेवा)

कृति : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

संपर्क : आनंद निकेतन, बाजार समिति रोड, पो. गजाधरगंज, बक्सर-802103 (बिहार)

आपकी राय का स्वागत है

'पुस्तक संस्कृति' पत्रिका में प्रकाशित सामग्री पर आपके सुझाव, राय का सदैव स्वागत है। देश-दुनिया के साहित्यिक-सांस्कृतिक परिवेश, प्रकाशन जगत् की गतिविधियों पर आपकी सम्मति के लिए इस स्थान पर आपके पत्र/ईमेल की प्रतीक्षा है।

संपादक, पुस्तक संस्कृति, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन, 5, इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-2, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
संपर्क : 267-07758/07876/07700
ईमेल : editorpustaksanskriti@gmail.com

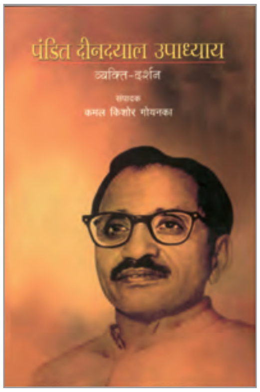

पंडित दीनदयाल उपाध्याय : व्यक्ति दर्शन

समीक्षक : **रोहित कुमार**

लेखक : **कमल किशोर गोयनका**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 208

मूल्य : रु. 230/-

भारतीय राजनीति को नया विकल्प देने वाले पंडित दीनदयाल उपाध्याय की जन्मशती मनाई जा रही है। वर्तमान भारत सरकार ने इस अवसर पर उनको श्रद्धांजलि देने हेतु 'दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य योजना' और 'दीनदयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना' की शुरुआत की है। स्वाधीन भारत में जब कांग्रेस ही एकमात्र बड़ी पार्टी थी जिसे अन्य पार्टियों का सहयोग प्राप्त था, तब विपक्ष बहुत कमजोर था। ऐसे में विपरीत विचारधारा वाले जनसंघ की स्थापना में दीनदयाल उपाध्याय का अभूतपूर्व योगदान रहा। आज भाजपा जिस रूप में प्रचंड बहुमत पाकर सत्तारूढ़ है, उसके मूल में पंडित जी का अथक परिश्रम, कुशल नेतृत्व और सुदृढ़ विचारधारा ही है।

भारतीय राजनीतिक इतिहास में मन, कर्म और वचन की एकता रखने वाले व्यक्ति उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। ऐसे अकाल में लाल बहादुर शास्त्री, राम मनोहर लोहिया, महात्मा गाँधी की परंपरा में पंडित दीनदयाल उपाध्याय को रखा जा सकता है।

लोकोपयोगी सामाजिक विज्ञान शृंखला के तहत समकालीन लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार कमल किशोर गोयनका द्वारा संपादित 'पंडित दीनदयाल उपाध्याय : व्यक्ति दर्शन' नामक पुस्तक पंडित जी के जीवन को संक्षिप्त रूप में हमारे सामने रखते हुए उनके राजनीतिक, वैचारिक, सामाजिक चिंतन के विविध पक्षों से परिचय कराती है। मूलतः राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के समर्पित कार्यकर्ता पंडित जी ने राजनीति में अनिच्छा से प्रवेश किया। श्यामाप्रसाद मुखर्जी की मृत्यु के पश्चात् रामराज्य परिषद और हिंदू महासभा के साथ जनसंघ के विलय किए जाने के प्रस्ताव को खारिज करते हुए इन्होंने जनसंघ को अपने बूते सँभाला और अखिल भारतीय पार्टी बनाया। वे रूढ़िवाद के हमेशा खिलाफ रहे, रामराज्य परिषद को नकारना इसकी गवाही देता है। वे जनसंघ को किसी एक धर्मशास्त्र आधारित नहीं बनाना चाहते थे। धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत के समानांतर उनका विचार था कि अपने धर्मदर्शन का विकास और परिमार्जन का अधिकार हर मतावलंबियों को है और राज्य द्वारा प्रत्येक वर्ग को ऐसा करने की सुविधा और सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। आज जिस भाजपा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर सांप्रदायिक होने के आरोप लगते हैं, पंडित जी ने उसे परंपरा और मर्यादा के गौरव से पूर्ण परंतु सांप्रदायिकता से मुक्त बनाना चाहा था। 'एकात्म मानववाद' के प्रवर्तक दीनदयाल जी निहित स्वार्थों और एकाधिकार को उपजने देने के कठोर विरोधी थे। विकेंद्रित अर्थव्यवस्था का मूल चिंतन उनका ही था। आज जबकि दीनदयाल जी का सींचा जनसंघ भाजपा के रूप में सत्तारूढ़ है और उनकी नीतियाँ पूँजीपति वर्ग को लाभान्वित करती जान पड़ती हैं, ऐसे में दीनदयाल जी के विचार महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं जिन्होंने यह माना कि अर्थव्यवस्था कुछ पूँजीपतियों और विदेशी ऋणदाताओं के अधीन नहीं रहनी चाहिए। उनका जनसंघ समाजवाद से अभिप्रेत सामाजिक न्याय का समर्थक था परंतु आर्थिक स्रोतों के केंद्रीकरण का विरोधी।

इस पुस्तक में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक गोलवलकर, धर्मवीर भारती, सत्यव्रत सिन्हा, अटल बिहारी वाजपेयी के संस्मरणात्मक लेख शामिल हैं। स्वर्गवास के उपरांत तत्कालीन गणमान्य व्यक्तित्वों द्वारा दी गई भावभीनी श्रद्धांजलियाँ हैं तो अखबारों द्वारा अर्पित सुनहरे शब्द हैं। अपने पूज्य मामा जी को लिखे पत्र में दीनदयाल जी खुलकर सामने आते हैं और हिंदू को संगठित करने के साथ राष्ट्रहित में प्रत्येक माँ-बाप से एक संतान समर्पित करने की माँग करते जान पड़ते हैं। समय-समाज के अनुकूल उनके विचारों को संक्षेप में अंतिम पृष्ठों में समेटा गया है। यह पुस्तक उनकी अंतिम यात्रा से जुड़े रहस्यों से भी जूझती है।

दीनदयाल जी ने जिस राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जनसंघ के लिए अविवाहित रहकर जीवन समर्पित कर दिया, वे अपने चिंतन में उन संस्थाओं की सीमाओं का अतिक्रमण भी करते थे। वे कोई सत्तालोभी राजनीतिक नेता या अनुशासित दलगत सैनिक नहीं थे, उनमें एक गहरे चिंतक के बीज थे और पुरानी या नई रूढ़ियों से मुक्त होकर कुछ नया समाधान खोजने की छटपटाहट थी। उनकी उच्च शिक्षा का ही नतीजा था कि वे अपने विरोधी से भी सहमत हो जाते थे। उनके इसी तार्किक व्यक्तित्व के कारण विरोधी विचारधारा वाले तक उनका सम्मान करते थे।

अब जबकि राजनीति वैमनस्य, दोषारोपण, ईर्ष्या और बदले की भावना से भर चुकी है, दीनदयाल जी के व्यक्तित्व को जानना, समझना और उनके विचारों को आत्मसात् करना राष्ट्र को नई दिशा दे सकता है। विचारों को नकारना आसान है लेकिन उससे गुजरकर तर्क द्वारा सहमत-असहमत होना कम से कम आज स्वाभाविक नहीं रह गया है। उनका जीवन संघ को समर्पित होकर भी कुटुंब में आत्मीय बना रहा, यह उनके अद्वितीय चरित्र का परिचायक है। वे स्व से ऊपर समष्टि को समर्पित थे। उनके जन्मशती के समय यह पुस्तक एक आदर्श व्यक्तित्व की तलाश सरीखी है। ऐसे में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की इस नई पहल से किसी विचारधारा के पूर्वाग्रह से दूर हटकर रूबरू होना चाहिए।

समीक्षक : **भगवतीप्रसाद गौतम**

लेखक : **प्रकाश मनु**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 206

मूल्य : रु. 210/-

जो खुद कसौटी बन गए

अनेक चर्चित पुस्तकों के रचयिता डॉ. प्रकाश मनु की इस पुस्तक में उन महान नायकों की विविधवर्णी जीवन-कथाएँ सँजोई गई हैं जो भारत में जन्म लेकर पूरी दुनिया में छा गए या फिर विदेशी धरती पर जन्म लेकर भी भारत को अपना घर बना बैठे। यहाँ भूमिका रूप में स्वयं लेखक की अपनी बात है... 'कुछ सतरें सीधी-सादी'। इन सतरों, इन लकीरों का ध्येय स्पष्ट है—"तरुण पाठक इन्हें पढ़कर अपने देश और समाज के गौरवशाली इतिहास के साथ-साथ उन तेजस्वी नायकों को भी जानेंगे जिन्होंने खुद को तिल-तिल जलाकर इतिहास को नया मोड़ दिया।" संकलन में प्रमुख विभूतियों के बहाने कितने सारे देश-प्रेमियों से भेंट हो जाती है, इसका सहज आकलन करना कठिन है।

पहला ही सोपान है—'स्वामी विवेकानंद : योद्धा संन्यासी जो दुनिया जीतने आया था'। कोलकाता (तब कलकत्ता) के संपन्न परिवार में जन्मा हठीला बालक नरेंद्र, पिता की मृत्यु, परिवार का भार, रोजी-रोटी की तलाश, माँ जगदंबा से साक्षात्कार...ये सब पन्ने धीरे-धीरे खुलते हैं।...और अब उम्र यही कोई 23 वर्ष। तन पर गैरिक वस्त्र, मान-अपमान, मगर शशि जैसे गुरु भाई का साथ। कोलकाता से हाथरस तक का सफर, जिसने जीवन की दिशा ही बदल दी। ऐसा ही अद्‌भुत अध्याय है—'स्वराज्य के मंत्रदाता लोकमान्य तिलक का देशराग', निर्भीक सेनानी बालगंगाधर तिलक ने 'केसरी' और 'मराठा' जैसे लोकप्रिय पत्र निकाले, साथ ही 'गणेशोत्सव' और 'शिवाजी राज्याभिषेक पर्व' का आरंभ भी उनके असाधारण सोच का ही परिणाम था। काला पानी की सजा के दौरान ही उन्होंने कालजयी कृति 'गीता रहस्य' का सृजन किया। अंततः उन्होंने संग्राम की मशाल गाँधी जी को सौंप दी। सही अर्थों में तिलक और गाँधी 'एक ही पथ के पथिक' जो ठहरे।

'छोटी-छोटी बातों में छिपी है गाँधी जी की महानता'—यह पुस्तक का ऐसा सोपान है जहाँ अंग्रेजी साम्राज्य को हिला देने वाले महानायक बापू का व्यक्तित्व परत-दर-परत खुलता है। बापू की सुरक्षा में तैनात गोरा सिपाही, विदेशी महिला और रुपयों की थाली, काफिले में कुष्ठ रोगी का साथ, बच्चे के सवाल बापू से, जन्मदिन पर घी का दीपक, मारवाड़ी बहू का घूँघट, दाल के कंकड़ बीनते बापू से वकीलों की भेंट, जेल अधिकारी के जूतों के निशान, तिलक के भाषण में निज भाषा का चमत्कार...ऐसे अनेक प्रसंग हैं जो गाँधी को बापू और फिर महात्मा बना जाते हैं। अगले आलेख 'राजर्षि टंडन जी जो हिंदी के प्रतीक बन गए' में प्रकाश मनु लिखते हैं—गाँधी जी ने टंडन जी के एक पत्र के उत्तर में दृढ़ता से कहा था—"मेरे लिए हिंदी का प्रश्न तो स्वराज्य का प्रश्न ही है।" राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन गाँधी जी को गुरु मानते थे मगर भीतर से इतने विद्रोही थे कि उनसे झगड़ने में भी संकोच नहीं करते थे। वस्तुतः वे हिंदी के प्रबल पक्षधर थे। कहते थे—"अंग्रेज़ियत में लिप्त व्यक्ति मातृभूमि का सेवक हो ही नहीं सकता।" सच गाँधी जी जिस रूप में राष्ट्रपिता थे, टंडन जी उसी रूप में राष्ट्रभाषा-पिता थे।

अब हरिद्वार का एक संवाद—"...तो तुम चाहते हो कि अंग्रेज़ी-राज भारत से चला जाए?"/"ऐसा कौन भारतीय नहीं चाहेगा?" अफसर बुरी तरह हकबका गया। फिर बोला—"अरे, तुम तो बड़े खतरनाक आदमी हो।" ...और उसने अध्यापक को तत्काल नौकरी से हटा दिया। यह अंग्रेज अफसर था ए. ह्यूम और अध्यापक जी थे—'हिंदी के पाणिनी आचार्य किशोरी दास वाजपेयी'। पुस्तक में एक महान लोकयात्री हैं—'देवेंद्र सत्यार्थी, जिन्होंने लोक गीतों की तलाश में देश का चप्पा-चप्पा छान मारा'। उनके इस काम का महत्त्व खुद महात्मा गाँधी ने भी समझा। विश्वकवि टैगोर ने भी उनके श्रमसाध्य कार्यों की सराहना की। खासियत यह कि सत्यार्थी जी के दिल-दिमाग तो अनमोल ज्ञान व अनुभवों से भरे थे मगर जेबें एकदम खाली। फिर भी वे दृढ़ संकल्प रहे—"मुझे नदी बनना है...निरंतर बहना है।" एक बार ऑल इंडिया रेडियो स्टेशन पर उनके चुनिंदा लोकगीतों के पारिश्रमिक की बात उठी तो वे बस इतना ही बोले—"ये गाँव वालों की चीजें हैं, उन्हीं की पूँजी है। इन पर तो कॉपीराइट 'भारत माता' का ही है।"

ध्यातव्य है कि 'जो खुद कसौटी बन गए' केवल पुरुष नायकों पर ही केंद्रित कृति नहीं है। मनु जी यहाँ भी एक खास सोपान गढ़ते हैं—'महिला सेनानियों का कारवाँ भी चल पड़ा आगे...' और इस कारवाँ में शामिल हैं—भारतीय परचम फहरा देने वाली मादाम भीखाईजी कामा, दृढ़ निश्चयी नायिका कस्तूरबा, भारत कोकिला सरोजिनी नायडू, टैगोर की भांजी सरला देवी चौधरानी, असाधारण शक्ति पुंज कमला नेहरू, नेतृत्व कौशल की धनी विजयलक्ष्मी पंडित, पारसी पुत्री मिठू बेन पेटिट, संविधान सभा की सक्रिय सदस्य हंसा मेहता, ओजस्वी वक्ता सत्यवती देवी, भारत छोड़ो आंदोलन की धुरी अरुणा आसफ अली, गाँधी जी के कर्मक्षेत्र से जुड़ी दुर्गाबाई देशमुख, कांग्रेस रेडियो के साथ उतरी उषा मेहता, पूर्वोत्तर भारत की नगारानी गाइदिन्ल्यू, पल-प्रतिपल बापू की सेवा में जुटी मीरा बेन, बीबी वासंती के नाम से लोकप्रिय एनी बेसेंट, अपनी ही सत्ता के खिलाफ उठ खड़ी हुई नेल्ली सेनगुप्ता आदि अनेक वीरांगनाएँ प्रबल आवेग के साथ घरों से निकलीं और लाठी-बंदूक धारी सिपाहियों से टकराकर तत्कालीन गोरी सरकार को चुनौती पर चुनौती देती रहीं।

पुस्तक में अंतिम अध्याय है—'वे उदार हृदय अंग्रेज, भारत जिनका घर बन गया...'। यह गाँधी जी की ही असाधारण शक्ति का कमाल था कि अनगिनत विदेशी लोग भी भारतीय स्वाधीनता संग्राम में कूदे। ऐसे उदारमना विदेशियों में एनी बेसेंट, नेल्ली सेनगुप्ता, मीरा बेन (मेंडेलीन स्लेड), जिनका उल्लेख पूर्व में हो चुका है, के अलावा भी दीनबंधु (सी.एफ.) एंड्रयूज़, भगिनी निवेदिता (मार्ग्रेट नोबेल), सेवियर दंपती, वेल्दी फिशर, कजिंस दंपती, बेरियर एल्विन, वैज्ञानिक हाल्डेन जैसे कई लोग हुए जो इस देश की मिट्टी में ऐसे रचे-बसे कि यहीं के होकर रह गए। सीमाओं के चलते चाहकर भी उन्हें विस्तार देना संभव नहीं है। फिर भी पेपरबेक संस्करण रूप में संयोजित 'जो खुद कसौटी बन गए' से गुजरते हुए यहाँ जिन नायकों को जानने-समझने का मौका मिला, उन सभी में अथवा उनके इर्द-गिर्द महानायक महात्मा गाँधी की उपस्थिति रही। समग्रतः प्रमुख नायकों के चित्रों से सज्जित मुखावरण, कथ्य की व्यापकता, ज्ञानवर्धक सामग्री, भाषिक प्रवाह, स्तरीय मुद्रण...और फिर कहने के अंदाज ने इस कृति को किशोरों-युवाओं के लिए ही नहीं, प्रौढ़ पाठकों के लिए भी रोचक, प्रेरक और मूल्यपरक बना दिया है।

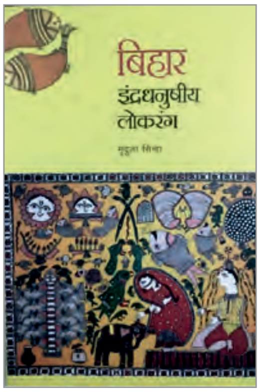

समीक्षक : **डॉ. राजीव श्रीवास्तव**

लेखिका : **मृदुला सिन्हा**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 209

मूल्य : रु. 340/-

बिहार
इंद्रधनुषीय लोकरंग

भारत की विराट लोक संस्कृति अपने ही विभिन्न प्रांतों की आंचलिकता को स्वयं में समेटे जिस प्रकार विविधतापूर्ण वैभव की अनंत धरोहर लिए वर्तमान में भी मुखर है, वह अद्‌भुत है। संस्कृति के मूल से यदि 'लोक' का विलोप हो जाए तब वह उसी प्रकार जड़ हो जाती है जैसे प्राण के बिना देह। एक ऐसी देह जो स्थूल रूप में दिखाई तो देती है परंतु अनुभूतियों के स्पंदन के अभाव में संज्ञा शून्य रह जाती है।

लोकरंग की बहुआयामी धरोहर की ऐसी ही जीवंत सौगात लेकर आई है वरिष्ठ लेखिका, विचारक एवं सामाजिक कार्यकर्ता श्रीमती मृदुला सिन्हा की नवीनतम पुस्तक 'बिहार : इंद्रधनुषीय लोकरंग'। पौराणिक काल से ही अपनी लोक परंपरा के गौरवमयी धरोहर को विगत की समृद्ध संपदा के संग आगत के प्रत्येक स्वप्न संसार के व्योम पर सजाकर वर्तमान के जिस मस्तक को श्रृंगारित किया गया है, उसी की अनुपम छवि है यह पुस्तक। भारत का वर्तमान बिहार प्रांत अपने गौरवशाली अतीत में जहाँ एक अंचल में मिथिला की महान लोक धरोहर को समेटे हुए है, वहीं दूसरी ओर विश्व के प्रथम गणतंत्र वैशाली की अपूर्व लोकसत्ता को वरण किए हुए है। पर इन सबके मूल में जिस लोकरंग की घुट्टी पीढ़ी दर पीढ़ी पारंपरिक स्वरूप लिए आज भी झरती चली आ रही है, उसी को बूँद-बूँद कर समेटा है मृदुला सिन्हा ने अपनी इस पुस्तक में। मौखिक परंपरा से काल के विभिन्न चरणों में संवर्धित होती आ रही लोक गीत-संगीत की धरोहर अब लिखित/मुद्रित रूप में इस पुस्तक में समाई हुई है जो निःसंदेह हर किसी के मन को आह्लादित करने का एक मुख्य कारक बन चुका है।

'लोक' में वह सब समाहित है जो हमारी दिनचर्या, परिवेश, वातावरण तथा खेत-खलिहान, तीज-त्योहार, आनंद-उत्सव, गीत-संगीत, नाटक-नौटंकी, नाच एवं भाव-भंगिमा, कला-कृति, हास-परिहास, मान-मनौवल, छेड़छाड़, जीव-जंतु, जीवन-मरण, भरण-पोषण, प्रकृति जैसे और भी ढेरों प्रत्यक्ष-परोक्ष सरोकारों को व्यक्त-अभिव्यक्त करते हैं। यह 'लोक' की ही अवधारणा का परिणाम है कि अतीत की समस्त धरोहर नैसर्गिक रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी प्रवहमान रहते हुए वर्तमान के साहचर्य में भविष्य को संवर्धित कर रही हैं। यह पुस्तक उन्हीं अनमोल लोक रत्नों के बिखरे पड़े शब्द-संपदा एवं अर्थ-व्यंजना को उसके प्रचलित मूल स्वरूप में सहेजकर हम सबके मध्य परोसती है। विश्वप्रसिद्ध हिंदी साहित्य के यशस्वी कवि विद्यापति बिहार की मिट्टी के ही वटवृक्ष हैं तो यहीं की मिथिला भूमि के बेटे गोनू झा तथा भोजपुरी के सिरमौर्य लोकनाट्य के प्रणेता भिखारी ठाकुर के साथ-साथ गौरा पार्वती, गार्गी, मैत्रेयी, सीता, अहिल्या, आम्रपाली जैसी कई अन्य ढेरों प्राचीन भारत की पूजनीय विदुषियाँ बिहार के इंद्रधनुषीय लोकरंग की इसी पुस्तक में रची-बसी हैं।

भोजपुरी, मगही, अंगिका, मैथिली, बज्जिका जैसी बिहार की विभिन्न भाषा-बोली में अतीत की समृद्ध परंपरा को समेटे जो लोकरंग यहाँ के लोक साहित्य, लोक गीत-संगीत एवं लोक नाट्य में भरे पड़े हैं, उनके मूल रूपक का आस्वादन कराती मृदुला सिन्हा की यह पुस्तक लोरी, कहावतें, बुझौवल अर्थात् पहेली, गारी यानी गाली, के साथ ही बिरहा, फाग, चौता, कजरी के उन बोलों को जीवंत कर बैठी है जिसे बालपन में हर किसी ने कभी न कभी सुना होगा। इन्हीं के साथ लोक अभिनय के रंग झिझिया, डोमकक्ष, सामा चकवा से रँगे ठेठ बिहारीपन को उजागर करते हुए पुस्तक में घर-परिवार के रिश्ते-नाते, संबंध-संबंधी, खान-पान और पहनावे की लोक परिपाटी को बड़े ही मनोरम रूप में सँजोया गया है।

प्रकृति के सान्निध्य में पेड़-पौधे, वृक्ष-लता, पशु-पक्षी, जीव-जंतु, नदी-सरोवर के साथ ही ग्रामीण देवी-देवता का गुणगान करती यह पुस्तक कुछ ऐसे तथ्यों को भी अपने भीतर समेटे हुए है जो सलीमा के पर्दे पर रूढ़ होकर शेष भारत और विश्व के अनेक देशों में आज भी मुखर है। बिहार के सम्मानित पुत्र संगीतकार चित्रगुप्त ने हिंदी और भोजपुरी फिल्मों में अपनी ही धरती के गीतों को यहीं की लोक धुनों में अपनी रचनात्मकता के छौंके के संग जिस सुरीले रूप में प्रस्तुत किया है, वह लोक गीत भी इसी पुस्तक में अपने मूल रूप में मुद्रित है। 'चंदा मामा आरे आव पारे आव' जैसा मधुर लोरी गान ऐसे ही ढेरों गीतों में से एक है। इसी प्रकार अपनी प्रथम फिल्म 'वचन' में संगीतकार रवि ने 'चंदा मामा दूर के, पूए पकाए बूर के' की प्यारी थपकी से बालपन को सहलाया है तो राजकपूर ने अपनी फिल्म में बिहार की प्रचलित पहेली को गीत-संगीत का हिस्सा बनाया है। संगीतकार शंकर-जयकिशन के संगीत में मुकेश और लता मंगेशकर का गाया 'इचक दाना बिचक दाना' पहेली गीत तो सभी की स्मृति में आज भी जीवित है। इस पुस्तक में 'हरी थी मनभरी थी नौ लाख मोती जड़ी थी, राजा जी के बाग में दोशाला ओढ़े खड़ी थी' पहेली को देखकर मन पुलक से भर उठता है।

इस पुस्तक की समीक्षा करते हुए जब मैं इसकी लेखिका प्रसिद्ध साहित्यकार तथा वर्तमान में गोवा प्रदेश की राज्यपाल मृदुला सिन्हा से बतकही में रमा हुआ था तब उनके मुख से ही पुस्तक में वर्णित लोकरंग की छटा के प्रस्फुटन ने मुझे अपनी माटी की सोंधी महक से भीतर तक सराबोर कर दिया। इस प्रकार बिहार के लोकरंग को पुस्तक में निरूपित करने वाली वे प्रथम लेखिका तो बन ही चुकी हैं, साथ ही पूर्व में दशकों पहले दिल्ली में रहते हुए 'दूरदर्शन' के राष्ट्रीय चैनल पर बिहार के लोक गीत को स्वयं गाकर प्रस्तुत करने वाली प्रथम गायिका होने का सौभाग्य भी इन्हीं के हिस्से आता है। पुस्तक के आवरण पर अंकित विश्वप्रसिद्ध बिहार की 'मधुबनी पेंटिंग' का चित्र भी इसी मिट्टी के लोकरंग का एक ऐसा रंग चित्रित करता है जिस पर दृष्टिपात करते ही हृदय में लोकरंग का इंद्रधनुष स्वतः ही प्रगट हो उठता है। पर यह पुस्तक अंतिम नहीं है। मृदुला जी ने ही मुझे बताया कि इसके बाद लोक संस्कृति के भिन्न-भिन्न रंगों को समेटे शीघ्र ही दूसरी पुस्तक भी 'राष्ट्रीय पुस्तक न्यास' से आ रही है जो बिहार के लोकरंग में ढेरों अनूठे रंगों से सभी को परिचित कराएगी।

इस पुस्तक का वाचन करते हुए स्मृतियों के आकाश पर विचरण को तत्पर जब मन पक्षी विस्मृत हो चुके उन सब दृश्य-परिदृश्य को सहसा नैनों के समक्ष उपस्थित पाता है, जो अभी तक लुप्तप्राय हो गए थे, तब अचरज के सान्निध्य में हृदय इसी में पूरी तरह से रम जाता है। पुस्तकें यूँ तो ढेरों होती हैं जिन्हें हम अपने निजी संग्रह में स्थान देते हैं, परंतु ऐसी पुस्तक कम ही होती हैं जो आपके संग्रह में स्थान पाने के पूर्व स्वतः ही आपके मन में आसन जमा लेती हैं। यह पुस्तक ऐसी ही एक विशिष्ट निधि है जिसे सहेजकर आप संस्कार-संस्कृति-सरोकार की त्रिवेणी से परिवार सहित पवित्र हो जाते हैं।

प्रकृति के बदलते रंग : हरित प्रौद्योगिकी के संग

समीक्षक : **कमलेश भारतीय**

लेखिका : **डॉ. विनीता सिंघल**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 192

मूल्य : रु. 200/-

जनसंख्या वृद्धि, औद्योगिक विकास, शहरीकरण, बढ़ता प्रदूषण और भूमंडल के बढ़ते तापमान ने पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। पृथ्वी ग्रह की हालत दिन-प्रतिदिन बिगड़ती ही जा रही है। बदलती जलवायु और बिगड़ते पर्यावरण ने लोगों को बुरी तरह प्रभावित करना शुरू कर दिया है। हरियाली का तेजी से हो रहा सफाया और बदलता पर्यावरण प्राकृतिक प्रकोपों को उपजा रहा है। इस कारण मौसमों का संतुलन भी बिगड़ गया है। ऐसे में इक्कीसवीं सदी में कैसे होगा जीवनयापन? कुछ ऐसे ही सवालों व चिंताओं को लेकर विनीता सिंघल ने इस पुस्तक की रचना की है। प्रकृति के बदलते रंग हरित प्रौद्योगिकी के संग ही बचाए जा सकते हैं। अगर प्रगति हो तो प्रकृति के अनुकूल हो।

इसीलिए तो कहा गया है कि पृथ्वी हर एक की आवश्यकता के लिए पर्याप्त प्रदान करती है, उनके लाभ के लिए नहीं। यह भी कहा जाता है कि प्रकृति सबकी जरूरत तो पूरी कर सकती है लेकिन मनुष्य का लालच पूरा नहीं कर सकती। असल में वनों के कटान में मनुष्य की जरूरत धीरे-धीरे लालच में बदलती गई और इस तरह पर्यावरण प्रदूषित होता चला गया। वाहन बढ़ते जा रहे हैं और वातावरण जहरीले धुएँ से प्रदूषित होता जाता है।

रसायनों का उपयोग बढ़ता जा रहा है। अधिक उत्पाद पैदा करने के लिए किसान रसायनों का अंधाधुंध उपयोग करने लगे हैं; इस ओर अब ध्यान जाने लगा है और जैविक खेती का प्रचार किया जा रहा है। इनके लिए लेखिका ने अपने अनुभव से हरित प्रौद्योगिकी का रास्ता सुझाया है। घरों को इस तरह से बनाया जाए कि ग्रीन होम लगें। बहुत सारे उपाय सुझाए गए हैं। प्रदूषणमुक्त ईंधन, पवन ऊर्जा, बायो डीजल, परमाणु ऊर्जा के बारे में बड़े सरल ढंग से बताया गया है। इलेक्ट्रॉनिक कचरे से कैसे मुक्ति पाएँ और पर्यावरण मित्र : धुआँरहित वाहनों का विस्तारपूर्वक वर्णन बहुत ही रोचक है।

इसमें ग्रामीणों की सवारी बैलगाड़ी को आज भी पर्यावरण संरक्षण के लिए उपयोगी बताया गया है। ब्याह-शादी, बोझा ढोने और कुछ दूरी की यात्राएँ बड़े आराम से की जा सकती हैं। इसी प्रकार वाहनों के धुएँ से बचाने में दोपहिया साइकिल आज भी उतनी ही लोकप्रिय है। अब तो कार्यालयों में भी एक दिन साइकिल से आने के अभियान चलाए जा रहे हैं। यह बहुत ही रोचक और आम आदमी के दिल में उतर जाने वाली बातें हैं।

अंधाधुंध रासायनिकों के उपयोग को रोकने के लिए जैविक कीटनाशी उपयोग किए जा सकते हैं। पर्यावरण के संरक्षक बैक्टीरियाओं की जानकारी भी दी गई है। मृदा को स्वस्थ बनाए रखने के लिए जैव उर्वरक कितने उपयोगी हैं, इसकी विस्तारपूर्वक जानकारी दी गई है। परखनली वन और सामाजिक वानिकी के सुझाव भी दिए गए हैं। जन्मदिन पर पौधा लगाने, पौधों की रक्षा करने और हरियाली की ओर गंभीरतापूर्वक ध्यान देने के लिए अनेक बिंदु विचार के लिए छोड़े गए हैं। पुस्तक में अनेक चित्रों के माध्यम से बात को सरल तरीके से प्रस्तुत किया गया है। वृक्षों के महत्त्व पर जगह-जगह आम आदमी को आकर्षित किया गया है। पुस्तक अपने उद्देश्य में सफल है।

भारत में राज्यों का पुनर्गठन

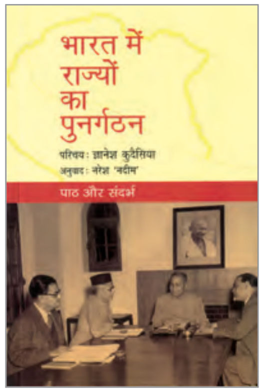

समीक्षक : **कमलेश भारतीय**

लेखक : **ज्ञानेश कुदेसिया**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 316

मूल्य : रु. 320/-

'भारत में राज्यों का पुनर्गठन' पुस्तक नई पीढ़ी व इतिहास के छात्रों व शोधार्थियों के लिए बहुत ही उपयोगी साबित हो सकती है। 20वीं सदी में भारत के इतिहास में चार ऐसे आयोग आए जिन्होंने उसके राजनीतिक जीवन पर निर्णायक प्रभाव छोड़ा। इन आयोगों में से भी 'साइमन कमीशन' इसलिए सबको याद रहता है क्योंकि इस कमीशन का विरोध करते हुए ऐसी दुःखद परिस्थितियाँ बनीं, जिनके चलते लाला लाजपतराय का जीवन भेंट चढ़ गया। इसी कमीशन ने भारतवासियों को झकझोरकर रख दिया और लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस की ओर से पूर्ण स्वराज के ऐलान की जमीन तैयार की।

सन् 1947 में रेडक्लिफ आयोग ने भारत का क्षेत्रीय मानचित्र ही बदल डाला। विभाजन की ऐसी सीमाएँ लादीं कि समुदायों को बाँटकर रख दिया। लाखों लोग बेघर हो गए। यह विभाजन की त्रासदी आज तक पुराने जख्म की तरह हरी हो जाती है। मंडल आयोग ने 1979-80 में सकारात्मक कार्रवाई को समाज के पिछड़े समुदायों पर लागू किया। इन आयोगों का विवरण इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं है बल्कि इसका उद्देश्य एस.आर.एस. आयोग की विस्तारपूर्वक जानकारी देना है। इस आयोग का गठन विवादों और टकरावों के बीच हुआ। खास तौर पर एक अलग तेलुगु राज्य की माँग को लेकर। गाँधीवादी कार्यकर्ता पोट्टी सीतारामुलु के मद्रास में आमरण अनशन के 58 दिन बाद शहीद हो जाने के पश्चात् तेलुगुभाषी क्षेत्रों में हिंसा और उग्र विरोध की लहर दौड़ गई।

बस इसी पृष्ठभूमि में एस.आर.एस. आयोग का गठन हुआ। राज्यों के पुनर्गठन का बुनियादी सरोकार भारत की एकता और सुरक्षा को बनाए

रखना और मजबूत बनाना रहा। वित्तीय, आर्थिक और प्रशासनिक सरोकार भी न केवल हर राज्य के बल्कि पूरे राष्ट्र के दृष्टिकोण से भी लगभग उतने ही महत्त्वपूर्ण होते हैं। इस दृष्टि से आयोग ने बहुत महत्त्वपूर्ण और कठिन कार्य को कर दिखाया। भाषा और संस्कृति के साथ-साथ भौगोलिक स्थितियों को भी ध्यान में रखा। नई पीढ़ी को यह जानना बहुत दिलचस्प लगेगा कि कैसे आयोग के सुझाव और चेतावनियाँ कितनी सही साबित हुई। मणिपुर, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, मुंबई, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश के साथ-साथ सीमावर्ती क्षेत्रों के गठन पर कितनी गहराई से विचार-विमर्श किया गया। यह इतिहास के छात्रों के लिए अति महत्त्वपूर्ण है। मणिपुर, हिमाचल प्रदेश को पहले केंद्र के अधीन रखने की सिफारिश की गई। बाद में ये राज्य बने। नदी जल विवाद खासकर कावेरी, गोदावरी और सतलुज पर भी गहराई से अध्ययन सामने आता है। आखिरकार आदिवासियों के संघर्ष से झारखंड और उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्र से लोगों के संघर्ष से उत्तराखंड राज्य अस्तित्व में आए। इनके बारे में आयोग ने संकेत कर दिए थे। इसी तरह तेलंगाना की माँग का जिक्र भी है जो अब नया राज्य बन चुका है। कभी-कभी महाराष्ट्र में विदर्भ की माँग भी उठती है लेकिन आयोग का मानना है कि भाषा और संस्कृति का असंदिग्ध महत्त्व होता है। फिर भी राज्यों के पुनर्गठन पर विचार करते समय कुछ दूसरे महत्त्वपूर्ण कारक भी हैं जिनको ध्यान में रखना चाहिए। पुस्तक बहुत सरल भाषा में लिखी गई है। अनुवाद स्तरीय है।

हमारे राष्ट्रपति : रामनाथ कोविंद

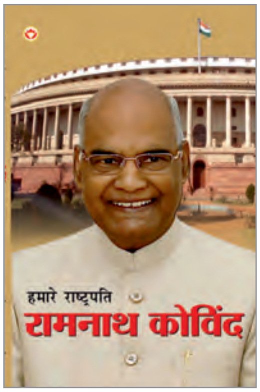

समीक्षक : **अंकुश**

लेखक : **अशोक कुमार शर्मा**

प्रकाशक : डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लिमिटेड, ओखला, नई दिल्ली-110020

पृष्ठ : 160

मूल्य : रु. 150/- (पेपरबैक)

भारत के राष्ट्रपति के रूप में श्री राजेंद्र प्रसाद से लेकर श्री प्रणव मुखर्जी तक, अब तक जितने भी महानुभाव पदारूढ़ रहे हैं, सामान्यतः सभी के बारे में लोग पहले से जानते रहे हैं, लेकिन भारत के चौदहवें राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद के बारे में अभी तक संपूर्ण और प्रामाणिक जानकारी सहजता से उपलब्ध नहीं है। श्री रामनाथ कोविंद को भारत के राष्ट्रपति पद के लिए नामित किए जाते ही, उनके बारे में कम जानने वालों को बहुत आश्चर्य हुआ था कि आखिर उनमें क्या खास बात है, जो उनको देश के सर्वोच्च संवैधानिक पद के लिए चुना गया? कई राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त लेखक अशोक कुमार शर्मा द्वारा लंबे शोध और अनेक साक्षात्कारों के आधार पर लिखित पुस्तक 'हमारे राष्ट्रपति : रामनाथ कोविंद' इस कमी को पूरा करने का देश में पहला प्रयास है। इस पुस्तक को अल्पमोली और पुस्तकालय संस्करणों के रूप में डायमंड पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली ने प्रकाशित किया है।

इस पुस्तक में श्री कोविंद के घर, परिवार, जन्म, प्रमुख घटनाओं, शिक्षा-दीक्षा, मित्रों, जीवन से जुड़े घटनाक्रमों, प्रेरक प्रसंगों और राजनीति में आने की तमाम घटनाओं को सरल तथा सहज शैली में लिखा गया है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है कि पुस्तक में उनके जीवन के हर दौर से जुड़े व्यक्तियों और स्थानों के चित्र भी सम्मिलित किए गए हैं, जिससे हर विवरण को समझना बेहद आसान हो जाता है।

इस पुस्तक को पढ़ने पर ही पता चलता है कि स्वभावतः राष्ट्रपति श्री कोविंद अन्य राजनेताओं से बहुत ही अधिक भिन्न हैं। वह बहुत ही कम बोलते हैं। दूसरों की आलोचना और विशेषतः आत्मप्रचार से बहुत दूर रहते हैं। बाल्यावस्था से ही श्री कोविंद अत्यंत मितभाषी, मितव्ययी और संयत रहे हैं। उनके संपूर्ण जीवन की दुर्लभ जानकारी के साथ लेखक ने बड़ी सहजता से पुस्तक के आरंभ में ही बताया है कि भारत के एक अत्यंत दुर्गम, अविकसित, संसाधनहीन और गरीबी से प्रभावित छोटे-से गाँव परौंख (कानपुर देहात) में पैदा होने के बावजूद श्री रामनाथ कोविंद प्रकृति प्रदत्त विलक्षण प्रतिभासंपन्न बालक थे। वह अपनी उम्र से भी बड़े बच्चों के आदर्श थे। अध्ययनशील, विनम्र, परिश्रमी और ईमानदार होने के कारण अपने सभी शिक्षकों के भी अत्यंत प्रिय बने रहे। सबसे बड़ी बात, श्री कोविंद ने बहुत-से मित्र नहीं बनाए। कभी भी समय नष्ट नहीं किया। उनकी कथनी-करनी एक ही रही।

यह पुस्तक रातों-रात और हाथों-हाथ कामयाब होने की होड़ में गलत मार्ग पर चले जाने वाले युवाओं के लिए निश्चित रूप में एक वरदान सिद्ध होगी। इसमें एक साधारण बालक के महान बनने की प्रेरणाप्रद कहानी है। जो इसलिए अधिक प्रासंगिक और अनुकरणीय लगती है क्योंकि इस जीवनगाथा का मुख्य पात्र श्री कोविंद कोई अतिमानव या दैवीय शक्तिसंपन्न व्यक्ति नहीं है। वह मुँह में सोने की चम्मच लेकर पैदा नहीं हुआ। वह मेहनती है परंतु हर परिस्थिति में जीतता ही नहीं चला जाता। वह कई बार लगातार हारता भी जाता है। वह हौसला भी खोता है। वह निराश भी होता है और पलायन की मानसिकता का शिकार भी हो जाता है, परंतु अपनी हताशा से प्रभावित होकर प्रयास करना नहीं छोड़ता। जीवन में कुछ कर दिखाने के इच्छुक व्यक्तियों को और खास तौर से युवाओं को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

कुछ मेरी कुछ तुम्हारी

समीक्षक : **पदमा राजेन्द्र**

लेखक : **श्रीति व संदीप**

प्रकाशक : अंसारी पब्लिकेशन, ग्रेटर नोएडा।

पृष्ठ : 148

मूल्य : रु. 250/-

अनोखा व खूबसूरत नाम लिए एक संग्रह आया है 'कुछ मेरी कुछ तुम्हारी'। हालाँकि कई कविताएँ मेरी तुम्हारी न होकर हमारी हो गई हैं बिना किसी प्रयास के, और यही इस काव्य-संग्रह की सबसे बड़ी खूबी बन गई है। पति-पत्नी दोनों एक ही रुचि, एक ही विधा में पारंगत हों ऐसा संयोग यदा-कदा ही होता है। प्रसिद्ध लेखक दंपती मन्नू भंडारी-राजेंद्र यादव का एक उपन्यास 'डेढ़ इंच मुस्कान' के बाद कविता के क्षेत्र में श्रीति व संदीप संभवतः पहले ऐसे दंपती हैं जो संयुक्त रूप से अपना संग्रह पाठकों को सौंप रहे हैं। निश्चित ही यह पहल बधाई योग्य है।

श्रीति व संदीप की 'कुछ मेरी कुछ तुम्हारी' काव्य कृति हाल ही में ग्रेटर नोएडा के अंसारी पब्लिकेशन से प्रकाशित हुई है। संग्रह में श्रीति की सैंतीस व संदीप की पच्चीस कविताएँ उन भावनाओं को अभिव्यक्त करती हैं जिनसे हर दिल का किसी न किसी रूप में वास्ता हो सकता है। इनमें न अकल्पनीय है, न बड़े-बड़े बोझिल शब्दों का आडंबर। श्रीति सरलता से कहती हैं—

कागज पर लिखूँ/या/दिल पर.../बस प्रेम लिखूँ
मंदिर में हो/या/ दिल में...

विश्वास से कहती हैं—

विश्वास उन बुजुर्गों का/जो अपना सब कुछ कर देते हैं
बच्चों के नाम
विश्वास परस्पर होता है/जिसमें बँधे होते हैं/हम सब।

तो यह कहते श्रीति के उत्साह का पारावार नहीं रहता कि—

मेरे घर का आँगन/कभी उदास नहीं होता
क्योंकि/यहाँ चहकती हैं चिड़िया
खिलते हैं फूल/और गुनगुनाते हैं भौरे...

वे इस बात से भी चिंतित हैं कि आधुनिकता की आड़ में हम यह तक नहीं जानते कि हमारे पड़ोस में कौन रहता है तो मिलने-माँगने के बहाने पड़ोस से जो रिश्ते बनते थे, अब वे रिश्ते भी नहीं रहे—

अब पड़ोस की चाची/नहीं माँगती/एक कटोरी शक्कर हमसे
ना ही हम उससे/दही जमाने के लिए जामन
अब पड़ोस की/दहलीज पर बैठ/गपशप नहीं करते हम
या परीक्षा देती लड़कियों में—
सारी जिंदगी ही/देती रहती हैं उन्हें परीक्षाएँ/चाहे अनचाहे
खुद के सोचने से/या/किसी के कहने पर
बिना किसी परिणाम/की अपेक्षा के...

यह कविता गहरे सवाल छोड़ती खामोशी को भेदती हुई समाप्त होती है। पूरी कविता मानो उस पीड़ा की तान पर रची गई है जो पीड़ा आज पृथ्वी की उस आधी आबादी की पीड़ा है, जिसे 'स्त्री' कहते हैं। जब यह कविता खत्म होती है तो आधी आबादी के लिए शोकगीत की गूँज मन व तन में छोड़ जाती है। ऐसी ही एक और कविता है—

विज्ञापनों में नहीं दिखते गरीबी से जूझते लोग
या फिर दूध के लिए तरसते बच्चे।

हाट जाती महिलाएँ नारी के स्वाभिमान के प्रति एक प्रकार की अतिरिक्त ऊर्जा से भरी हुई साफ दिखाई दे रही है। यह कविता नारी के मेल-जोल, सखी-सहेली से युक्त कर रही है तो संग्रह की प्रवृत्ति से बचाते हुए संतोष का पाठ भी पढ़ा रही हैं।

कहने का आशय यह है कि श्रीति की कविताएँ नारी का अधिकार किसी से माँग नहीं रही हैं बल्कि नारी को ही जगाकर कह रही हैं—

एक दिन अचानक/बच्चे बोल उठते हैं/माँ तुम तो बिलकुल
पिता-सा व्यवहार करने लगी हो।
तब अहसास होता है मानो एक ऐसे समाज की रचना होगी
जिसमें नर और नारी की भिन्न-भिन्न नहीं अपितु
सम्मिलित संरचना उभर आएगी।
एक दिन अचानक/सदा के लिए सो गए बाबा
और खूँटी रह गई/सदा के लिए अकेली

मर्म को स्पर्श करती यह कविता बहुत खास है जो आम कविताओं से बहुत अलग है और श्रीति की संवेदनशीलता को बहुत गहराई से नापती है। ऐसी ही 'दरवाजा और दहलीज' कविता है जो अपने आप में व्यापकता लिए है। दहलीज पर न सिर्फ रंगोली बनाई जाती है बल्कि आरती व नजर भी उतारी जाती है तथा इंतजार के साथ हिदायतें भी दी जाती हैं। बेटियाँ, सुबह, सफर, कोना, जो सिर्फ कहने भर को कोना है, वहाँ स्मृतियों का खजाना अटा पड़ा है जो यादों की पोटली खोलते ही सजीव हो उठता है। कचरे के डिब्बे में सर्दी-गर्मी-बारिश की परवाह न कर ममत्व की तलाश में निकलती माँ की ममता हो या दुआ में उठे हाथ हों, पुराने दिन, पुराने चावल से होते हैं जो महकते हैं पूरे समय और महकाते भी हैं। तो बात इंसानियत की हो या यथार्थ की, श्रीति जिंदगी की सच्चाइयों से रूबरू होने के बावजूद एक क्षण को भी प्रकृति और प्रेम से स्वयं को विलग नहीं होने देतीं।

सहज, सरल एवं सुबोध भावाभिव्यक्ति की इन रचनाओं में विषय वैविध्य के साथ प्रेम की अनुभूतियों के विविध रंग अंकित हैं जो साथी के प्रति अपने भरपूर समर्पण, सौहार्द व विश्वास पर विजय पाकर प्रेम में परिणत मुखर हो कह उठता है—

तुम्हारा मौन मुस्कराना/और संवेदनहीन होना भी
मेरे लिए सिर्फ एक ही अर्थ रखता है
वह है प्रेम, हमारा प्रेम।

पुस्तक के दूसरे भाग में संदीप की कविताएँ हैं, जो उनके पहले संग्रह 'कैनवास पर शब्द' की तरह ही उम्दा हैं। अपनी भावनाओं को कविता व रेखांकन में ढालने की कला में सिद्धहस्त संवेदनशील रचनाकार अपने आसपास के वातावरण, मौसम के ठंडे-गरम मिजाज, पक्षियों के कलरव, संस्कृति व सरोकार जैसे विषय या मुद्दे को एक खास नजरिए से देखते हैं। देखते-देखते समझते हैं और तभी वह संवेदनाओं पर जमी हुई बर्फ को रिश्तों की गर्माहट से तोड़ना चाहते हैं—

रिश्तों की गर्माहट/जो वक्त आने पर
गला सके-तोड़ सके/जमी हुई बर्फ
यहाँ-वहाँ/न जाने कहाँ-कहाँ!!

संदीप को सिर्फ रिश्तों पर जमी बर्फ को हटाने की ही गरज नहीं है अपितु वे धरा की भी चिंता कर रहे हैं, तितली बन रंग भी बिखराना चाहते हैं तो 'गौरैया' और 'कविता' अपने सुगठित शिल्प और सारगर्भित भाषा से पाठक को परिचित करवाती हैं—

गौरैया का होना/कविता का होना है
गर कहीं भी/उतरती है कविता/तो सच मानिए
कहीं आसपास ही होंगी गौरैया भी!
बिटिया पर कविता, कागज पर बेआवाज कविता
कहीं ऐसा तो नहीं/कि बना लिया हो
चिड़िया ने/मेरी कविता में घोंसला।

चूड़ी की खनकार में कविता तो टूटे सपने में भी कविता। उनकी एक भी कविता ऐसी नहीं जो सोचने के लिए विवश नहीं करती हो। आजकल सम्मान यूँ ही परिहास के पर्याय बन चुके हैं, इसलिए वे कहते हैं—

इन्साँ बन जन्मा हूँ/इन्साँ ही रहने दो
खुदा मत करो/मित्रों मुझे बड़ा मत करो

'क्या लौट आते हैं पिता?' एक बेहतरीन रचना है जिसने अंतरंगता स्थापित करने का कार्य तो किया ही है, साथ ही जवाबदारियों के प्रति सजगता का अहसास भी करवाया है। कविता का एक अर्थ यह भी होता है कि वह सभी का भला चाहती है, हर क्षण परोपकार में खड़ी रहती है, तभी तो 'संग्रहालय' जैसी कविता का जन्म होता है—

मैंने भी सोचा है/मैं भी करने लगूँ संग्रह
बिखरती, बहती बर्बाद होती जल बूँदों का
मैं बूँद-बूँद बचाना, सहेजना, संग्रह करना चाहता हूँ....

संदीप की कविताओं में परंपराओं से प्रेम रखने की गुहार है—

मुझे हाट जाना है/हाट ही बन जाना है
डियो, एयर फ्रेशनर, परफ्यूम नहीं/
सौंधी खुशबू मिट्टी की/साँसों में भरना है
मुझे हाट जाना है...

समय का सच है—

ये मॉल, ये चकाचौंध तुम्हें हो मुबारक

तो विनम्रता की पराकाष्ठा है—

जब कभी मिला करो/फूलों-सा खिला करो!
बनते हुए अनजान इस बात से कि
वाकई यहाँ कुछ भी तो नहीं है हमारा!

भरपूर संवेदनाओं से भरी एक और कविता है—

सोचता हूँ/आज/निकल ही पड़ूँ
और हो आऊँ पड़ोस में!

एक और कविता देखिए—

मैं चुप हूँ/इसका मतलब यह नहीं
कि/सुन नहीं रहा तुम्हें/और तुम्हारी बातें

श्रीति व संदीप दोनों ही व्यापक दृष्टि के साथ व्यापक सोच रखते हैं। दोनों की सोच कई जगह एक-सी हो गई है जो उनके सफल दांपत्य का सच उजागर करती है। मिसाल के तौर पर देखिए—

हाट दोनों जाना चाहते हैं, चिड़िया से दोनों का नाता है,
प्रेम-विश्वास, संवेदनाएँ दोनों की पूँजी है,
बिटिया और माँ दोनों को प्यारी है तो पिता वटवृक्ष।

कहने का आशय यह है कि उनकी कविताओं में अनूठा सामंजस्य दिखाई देता है।

गहरी चिंतन धारा से भरी कविता अपनी भूमि/अपनी रियासत या अपनी सियासत के लिए/बनते हुए अनजान/इस बात से/कि वाकई यहाँ/कुछ भी तो नहीं है हमारा! दबंगता से ओतप्रोत पंक्तियाँ देखें—

भरभरा कर/ढही जाती है सत्ता/पता भी नहीं चलता
अनोखे हो गए हैं/तेवर प्रहार के
विलोम के बरक्स...

परिवेश की सच्चाइयाँ हैं— क्या लौट आते हैं पिता? समय की पुकार पर नजर रखती कविता पुल इस बात से, विलोम में लय, गद्दारों को आगाह करते वे कहते हैं—

छद्म वेश/कब तक पहनेगा देश?

प्यार की बातें हैं, पर यहाँ कोई छिछोरा प्रेम नहीं बल्कि जीवन की सौगात लिए वह कहता है—

शब्दों से परहेज को सहेज/मैं चाहता हूँ लिखना
तुम्हें एक प्रेम पत्र/ बड़ा-सा/बहुत बड़ा/
पाताल से आकाश तक का विस्तार लिए...

प्रेम से परिपूर्ण कुछ पंक्तियाँ...

मैंने कहा नहीं/तुमने सुन लिया/मैंने जताया नहीं/तुमने मान लिया
मैंने पढ़ाया नहीं/तुमने गुन लिया/मैं समझ गया/हम प्रेम में हैं!

बिना कोई वादा किए वो इस बात का दिलासा देते हैं कि—

दिला सकता हूँ तुम्हें/इस बात का यकीं/कि तुम्हें/भूलूँगा कभी नहीं!

कविता के साथ दिए संदीप के सशक्त व समर्पक रेखांकनों को देखकर पुस्तक के फ्लैप पर कला समीक्षक संजय पटेल के लिखे इस शीर्षक से सहमत हुआ जा सकता है कि 'शब्द से सुरीली जुगलबंदी करते रेखांकन'। कुल मिलाकर कृति स्वागत योग्य एवं संग्रहणीय है।

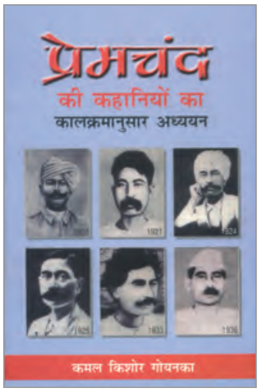

प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन

समीक्षक : **अल्पना भसीन**

लेखक : **कमल किशोर गोयनका**

प्रकाशक : नटराज प्रकाशन, दिल्ली-110052

पृष्ठ : 760

मूल्य : रु. 230/- (सजिल्द)

साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद की भूमिका अतुलनीय है। हिंदी साहित्य की कहानी तथा उपन्यास विधा में प्रेमचंद की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। उन्होंने इसके माध्यम से लोगों को साहित्य से जोड़ने का काम किया। प्रेमचंद का लेखन हिंदी साहित्य की ऐसी विरासत है जिसके बिना हिंदी के विकास का अध्ययन अधूरा है। 'प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन' पुस्तक में लेखक डॉ. कमल किशोर गोयनका ने प्रेमचंद की सभी कहानियों का कालक्रम के आधार पर विवेचन एवं विश्लेषण किया है। इस अध्ययन में प्रत्येक कहानी को कालक्रम में देखा एवं परखा गया है तथा सभी कहानियों को समान रूप से महत्त्व दिया गया है और कहानी की संवेदना, उसकी आत्मा तथा लेखकीय दृष्टिकोण का विवेचन किया गया है। इस प्रकार उनकी कहानियों की रचना-प्रक्रिया, उनकी मूल चेतना, उनके युग-संदर्भ तथा लेखकीय अभिप्रेत की कहानी के पाठ के आधार पर समीक्षा की गई है। पुस्तक की सामग्री को आठ अध्यायों में तीन परिशिष्टों सहित 760 पृष्ठों में प्रस्तुत किया गया है।

प्रेमचंद : कहानीकार का इतिहास नामक पहले अध्याय को लेखक ने दो भागों में विभाजित किया है यथा, (अ) प्रेमचंद-पूर्व कहानी की स्थिति और प्रेमचंद का आगमन तथा (आ) कहानियों की संख्या और हिंदी-उर्दू कहानी-संग्रह। इस अध्याय के माध्यम से लेखक ने हिंदी कहानी की विकास परंपरा तथा उस परंपरा में प्रेमचंद के योगदान को सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है।

प्रेमचंद की कहानियों की कालक्रमानुसार सूची विषयक दूसरे अध्याय में प्रेमचंद की संपूर्ण हिंदी-उर्दू कहानियों की कालक्रमानुसार सूची प्रस्तुत की गई है। कहानी का जो भाषा-रूप पहले प्रकाशित हुआ है, उसे ही कहानी का प्रथम प्रकाशन मानते हुए उसकी प्रकाशन तिथि को ही कहानी का प्रकाशन-काल माना गया है।

तीसरे अध्याय **प्रेमचंद का कहानी-दर्शन** के अंतर्गत प्रेमचंद के कथा साहित्य की वैविध्यपूर्ण विशेषताओं का वर्णन है। इस अध्याय में बताया गया है कि बीसवीं शताब्दी के इस क्रांतिकारी लेखक ने पुरातन से वही ग्रहण किया, जो नई शताब्दी के लिए उपयोगी था तथा नवीन युग से वही स्वीकार किया, जो हमारी पुरातन भारतीय चेतना से संपृक्त हो सकता था। प्रेमचंद की दृष्टि निश्चय ही नवीनता की ओर थी, परंतु उनकी नवीनता पूर्णतः न तो पश्चिमी थी और न आधुनिकता की नकल थी, न अविवेकी होकर उसमें बहने का पागलपन था, परंतु उनमें पुरातन की पवित्र 'भारतीय आत्मा' तथा श्रेष्ठ जीवन मूल्यों को अक्षुण्ण रखने एवं आधुनिक विवेक से जीवन जीने का संकल्प था।

चौथे अध्याय में **प्रेमचंद की 1908 से 1910 तक की कहानियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन** है। इसमें लेखक ने स्पष्ट किया है कि बीसवीं शताब्दी का यह पहला दशक (1908-1910) यद्यपि प्रेमचंद की कहानियों का आरंभिक काल है, लेकिन प्रेमचंद के कहानी इतिहास में इसका विशेष महत्त्व है।

द्वितीय दशक (1911-1920) **की कहानियों का अध्ययन** नामक पाँचवें अध्याय में इस दशक में प्रकाशित प्रेमचंद की 80 कहानियों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इन 80 कहानियों में 67 उर्दू तथा 13 हिंदी की कहानियाँ थीं। प्रेमचंद की कहानियों की दृष्टि से यह दूसरा दशक विस्तार का काल है। यह विस्तार केवल संख्या की दृष्टि से ही नहीं है बल्कि इसमें उनकी संवेदनाओं का भी विस्तार होता है।

तृतीय दशक (1921-1930) **की कहानियों का अध्ययन** नामक छठवें अध्याय में साहित्य जगत् में प्रेमचंद की अमिट छाप के दर्शन होते हैं। इस दशक में प्रेमचंद की 136 कहानियाँ प्रकाशित हुई जिनमें 116 हिंदी में तथा 20 उर्दू में थीं। इस कालावधि में अद्‌भुत एवं कालजयी रचनाओं का प्रकाशन हुआ यथा, हार की जीत, शतरंज के खिलाड़ी, सवा सेर गेहूँ, हिंसा परमोधर्म, बड़े बाबू, पूस की रात आदि।

चतुर्थ दशक (1931-1936) **की कहानियों का अध्ययन** नामक सातवें अध्याय में प्रेमचंद की इस कालावधि में प्रकाशित हुई 75 कहानियों का वर्षवार विवरण तथा उनके कहानी-शास्त्र का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय में 'सौत', 'कुत्सा' तथा 'रहस्य' नामक कहानियों की मूल पांडुलिपियों के प्रथम पृष्ठ की प्रति भी शामिल की गई है।

उपसंहार नामक आठवें अध्याय में लेखक ने प्रेमचंद के कहानी साहित्य का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है।

इसके साथ ही, पुस्तक में तीन परिशिष्ट भी शामिल किए गए हैं, परिशिष्ट 'क' में प्रेमचंद की कहानी 'सौत' की मूल पांडुलिपि प्रस्तुत की गई है। परिशिष्ट 'ख' में प्रेमचंद की कुछ कहानियों की अंग्रेजी रूपरेखाएँ शामिल हैं तथा परिशिष्ट 'ग' में पुस्तक के लेखक, डॉ. कमल किशोर गोयनका की प्रकाशित पुस्तकों की सूची प्रस्तुत की गई है।

अतः यह पुस्तक साहित्य के अध्येताओं के लिए अत्यंत उपयोगी साबित होगी।

प्रेमचंद की कहानी-यात्रा को जानने की इच्छा रखने वाले पाठकों को यह पुस्तक आकर्षित करेगी व उनके अध्ययन में सहायक सिद्ध होगी।

समीक्षक : **अनुराग चतुर्वेदी**

लेखिका : **अचला नागर**

प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

पृष्ठ : 255

मूल्य : रु. 199/-

छल

अचला नागर का पहला उपन्यास 'छल' नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के मूल्यों का संघर्ष है। एक खाते-पीते डायमंड व्यवसायी के संघर्ष, मूल्यों, परंपरा की बयानी, शब्द शिल्पी अचला नागर ने की है। यह उपन्यास गुजरात की पृष्ठभूमि में पले-बढ़े केशु की कहानी है जिसमें गर्भवती गौराबेन के पति जीवन लाल का जीवन पल झपकते ही समाप्त हो जाता है—गौराबेन अचानक विधवा हो जाती है। गर्भवती गौरा का बेटा भी तब ही जन्मता है। उपन्यास के ग्रामीण वरिष्ठ नट्टू काका कहते हैं, 'व्हऊ बेटा, आ रड़वा नूँ समय नथी' (यह रोने का समय नहीं है।)। अब यह छोटा जीवन तेरी ही जिम्मेदारी है, सँभाल इसे (पृष्ठ 10)। जीवन लाल के कौशल का परिचय लाल जी भाई देते हैं, 'बेन, आपके धणीं हमारे सबसे अच्छे हीरा कारीगर थे। उनकी कमी आसानी से पूरी नहीं होगी'। (पृष्ठ 11) केशु की माँ जीवन लाल को नौकरी देने वाले कारखाने में झाड़ू-पोंछा का काम करने लगती है। केशु 12 वर्ष का हो गया है। तभी माँ से भावनात्मक रिश्ता बनाने वाली घटना होती है। 'केशु लगभग बारह वर्ष का हो चुका था और छठी क्लास में पढ़ रहा था, पर पढ़ाई में उसका जी नहीं लगता था। एक दिन गुरु जी ने क्लास के बच्चों को माँ पर निबंध लिखने को दिया। सभी बच्चे बड़े ध्यान से लिख रहे थे, लेकिन केशु हाथ में पेंसिल लिए कोई कागज अपने आँसुओं से भिगोता रहा (पृष्ठ 13)।' यह उपन्यास केशु के आसपास ही घूमता है। इसमें नाटकीय स्थितियों की भरमार है। संयोगों की प्रचुरता है।

एक नाटकीय क्रम में केशु अपनी माँ के काम करने के स्थान पर जाकर घोषणा करता है कि अब से उसकी माँ कारखाने में काम नहीं करेगी। इसके बाद लेखिका लिखती है, 'वहाँ खड़े सभी लोगों और गौराबेन की आँखों में आँसू थे। (पृष्ठ-14) केशु हीरे तराशने का उस्ताद बनता है और उसका दोस्त आतिश आंगडिमा। आतिश केशु को बताता है कि बंबई सबसे अच्छा शहर है। केच्लू म्होटू शहरे छे, किरती सारी भीड़, हजारों-लाखों लोगों का समंदर—(पृष्ठ-14) चूँकि यह उपन्यास मुंबई केंद्रित है, इसलिए इसमें मुंबई का विस्तृत विवरण है और कई बार लगता है, इसमें देवनागरी में लिखे गुजराती संवादों की प्रचुरता है। सूरत के बाद मुंबई दर्शन का लंबा आख्यान है, जो रोचक है। लगता है आप दक्षिण मुंबई के डायमंड मार्केट की इमारतों, शोरूम और कारखानों में घूम रहे हों। बंबई का प्रयोग इस उपन्यास में जमकर और सही रूप में ही हुआ है। आतिश एक स्थान पर नया और पहली बार बंबई आए केशु से कहता है, 'बोला न, काय पता लेवें फिर समंदर देखने चलेंगे। अरे, जब तक दरिया के पानी में भीजे ना तो बंबई आने का मजा क्या है।' (पृष्ठ-16) मुंबई में जमीन की कमी और उसके अच्छे उपयोग का जिक्र करते हुए आतिश कहता है—'यही तो खासियत है इस शहर की, इतना बड़ा शहर, इतने बड़े धंधे, बड़े-बड़े आदमी, लेकिन जगह छोटी-छोटी। अरे, इधर तो रहना, घर बसाना भी बहुत कठिन है।' (पृष्ठ-17) पर इसी छोटी और मुश्किल मुंबई में केशु और आतिश मुंबई आते हैं और अपनी सफलता के परचम गाड़ देते हैं। इस व्यापारी संस्कृति का पहला मिलन भी बहुत सलीके से बताया गया है। 'मगन भाई ने पॉकेट में से पर्स निकाला और उसमें से एक चाँदी का सिक्का केशु को देते हुए बोले, जीवन से मेरा प्रेम का रिश्ता था। जब भी हम मिलते, दिल खोलकर बातें करते थे। आज तुझे पहली बार देखा न, रख ले।' (पृष्ठ 19)

केतकी-केशु का विवाह भी कम रोचक नहीं है। बा और आतिश की मदद और केशु की माँ यानी बा का यह वाक्य कितना सटीक है कि 'दीकरा में सारी बातें हो चुकी हैं, अपनी कमियाँ छिपाकर जीवन भर के संबंध नहीं जोड़े जाते।' (पृष्ठ 21) केशु को धर्मभीरु भी बताया है। मुंबा देवी के दर्शन करने जब वह पहली बार जाता है तो उसका बटुआ चोर ले उड़ता है, यह केशु के लिए महानगर का झटका था।

इस उपन्यास में माँ-बेटे, पति-पत्नी और विभिन्न रिश्तों का चरित्र-चित्रण हुआ। वे रिश्ते शिद्दत के साथ गढ़े गए हैं, पर जिस तरह से आतिश और केशु को बताया गया है, वह बहुत ही सजीव है। एक बानगी पढ़िए—अब आतिश की आँखों से भी आँसू बह निकले, उसने खींचकर केशु को सीने से लगा लिया। कुछ पल दोनों यूँ ही खड़े रहे, फिर अलग होकर भीगी आँखों से एक-दूसरे को देख मुस्कराने लगे। केशु ने अपना हाथ आगे बढ़ाया तो आतिश ने भी उसके हाथ पर अपना हाथ रख दिया और दोनों हाथ बँधकर एक हो गए (पृष्ठ-27)। केशु को इस उपन्यास में 'व्यावसायिक नैतिकता' का व्यवसायी बताया गया है। इसमें दो बार ही छल होता है, पहला जब केशु के कारखाने में नगों की हेराफेरी हो जाती है और दूसरा जब केशु का बेटा केतन उसकी वसीयत में हेराफेरी कर पिता के सभी के साथ जिंदगी गुजारने के सिद्धांत को चुनौती देता है।

उपन्यास कभी-कभी सिनेमा की कसी हुई पटकथा लगता है। कई घटनाएँ अचंभित करने वाली आश्चर्यकारी होती हैं। केशु के हांगकांग जा रहे जहाज का दुर्घटनाग्रस्त हो जाना, केशु का बच जाना, उसकी स्मृति का लोप होना और फिर आ जाना और छल का पकड़ा जाना और दूध का दूध पानी का पानी तर्ज पर केतन को सजा होना। इस उपन्यास को पढ़ते हुए कई दृश्य गजब के बने हैं। भाषा के स्तर पर लगता है, गुजराती न जानने वाले पाठकों को कुछ कठिनाई आ सकती है, पर केशु के दोस्त आतिश, सचित, वकार के परिवारों में बोली जाने वाली बातचीत रोचक है और विविधता लाती है।

अचला नागर ने अपना यह पहला उपन्यास अपने पिता अमृतलाल नागर को समर्पित किया है, जिनका जन्म शताब्दी वर्ष अभी समाप्त हुआ है। 'छल' की कथा पाठक को बाँधे रखती है, कई बार पाठक के अनुमान सही भी बैठ सकते हैं। संयुक्त परिवार, संयुक्त दोस्ती और नैतिक मूल्यों की तरफदारी करने वाला यह उपन्यास पठनीय है।

संपादक : **अनुराग चतुर्वेदी**

लेखिका : **मैत्रेयी पुष्पा**

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., दरियागंज, दिल्ली-110002

पृष्ठ : 160

मूल्य : रु. 395/-

वह सफर था कि मुकाम था

घटना एक होती है, वाकया छोटा-सा होता है। पात्र एक या दो अथवा तीन-चार होते हैं। उनके बहाने हम क्या कहना चाहते हैं। अपने समय की समीक्षा करते हैं। अपने समाज को परिभाषित करते हैं, समझती हैं न आप! (पृष्ठ 9) मैत्रेयी पुष्पा के भावना, तर्क, स्मृतियों के सफर की बयानी का आधार बौद्धिक है। हिंदी जगत् को अपनी कहानियों-उपन्यासों और 'हंस' के संपादकीय से सम्मोहित करने वाले राजेंद्र यादव ने स्त्री और दलित लेखन को वह स्थान दिलवाया जिसके वे हकदार थे। राजेंद्र यादव को याद करते हुए मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं, 'वे गँवई कथाओं के प्रसंगों को सुनते हुए ऐसे तल्लीन हो जाते हैं जैसे कोई जोगी समाधि में बैठा हो। यह कैसा शख्स है, मैं सोचा करती, क्या इसकी ऐसी छवि से लोग परिचित हैं?' (पृष्ठ 16)

'गोमा हँसती है' का अंत गाँव जाकर मालूम करो, यह सलाह देने वाले राजेंद्र यादव पुस्तक की भूमिका भी लिखते हैं, पर इसके पहले वे राजेंद्र जी के उन मित्रों का जिक्र करना नहीं भूलती जो राजेंद्र यादव को औरतबाज जैसी गालियों से नवाजते थे। 'कितनी आसानी से जोड़ देते हैं आपसे हमारा शारीरिक संबंध।' मैत्रेयी पुष्पा इस आरोप के बारे में कहती हैं, 'मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि कोई स्त्री अनैतिक संबंधों के लांछन को हटाने के लिए अपनी पवित्रता का सबूत नहीं दे सकती है।' (पृष्ठ 17) मैत्रेयी पुष्पा कई नजरियों और कई मौकों पर अलग-अलग रूप में अपने 'मेंटर' राजेंद्र यादव को देखती हैं। कभी कहती हैं कि साहित्य या लेखन में हुस्न अल्पजीवी होता है। असली लंबी उम्र तो हुनर के हाथ में होती है। वे यह भी जानती हैं कि साहित्य लोक की व्यवस्था राजेंद्र यादव के हाथ में है। 20 वर्ष पुरानी दो यात्राओं का विवरण दो विरोधाभासी छोर पर पहुँचता है। पहली यात्रा में मैत्रेयी पुष्पा को लगता है, राजेंद्र यादव उनकी आजमाइश कर रहे हैं। यात्रा में वे अपने प्रेम प्रसंग की चर्चा करते रहते हैं। जोश में छह पराँठे खा लेते हैं और उस प्रेम की बात करते हैं जो मैत्रेयी पुष्पा जानती है। तभी उन्हें लगता है, दिल के मालिक को कहाँ उन्होंने दिमाग के खूँटे से बाँध दिया; लेकिन वे साथ ही यह भी तकसीद करती हैं कि राजेंद्र जी उनके बारे में कहते थे कि मैत्रेयी का चेहरा विश्वसनीय है और उसकी सूरत भोली है।

राजेंद्र यादव आखिर क्या थे? क्या वे विषपायी इनसान थे? क्या वे नीलकंठी साहित्यकार थे? लेकिन दूसरी यात्रा के अंत में जब राजेंद्र यादव कटिहार से भागलपुर निकल जाते हैं तो अकेली और राजेंद्र जी को याद करते हुए मैत्रेयी लिखती हैं कि राजेंद्र जी का व्यक्तित्व ही इतना मोहक है कि 'अनायास ही अधिकार जमाने का मन होता है।' वे एक जगह तो, 'नई प्रेमिका है, रूठेगी तो सही' भी लिख बैठती हैं, पर अपने और राजेंद्र जी के रिश्ते को भरोसे और विश्वास का रिश्ता बताती हैं। यात्रा ही उनके रिश्तों को मजबूत करती है, जिनमें कहानियाँ हैं और जिनकी कहानियाँ भी हैं।

राजेंद्र यादव की जिंदगी को स्त्री प्रसंगों से जोड़ें तो आयु के उत्तरार्ध में वे अपनी कहानीकार पत्नी मन्नू भंडारी से अलग हो, हौजखास से मयूर विहार में रहने लगे थे जिसे सफर या मुकाम के द्वंद्व में पड़ी लेखिका उनके सुखमय अकेलेपन से जोड़ती हैं। वे राजेंद्र जी को औघड़ मलंग कहती हैं और उनके घर सखा-सखियों और शाम सुहानी करने के लिए रिंदों की महफिल सजती थी। राजेंद्र यादव की 'मीता' नाम की आजन्म अविवाहिता रही प्रेमिका थी जिसकी भाभी बूढ़े राजेंद्र यादव को फोन पर बात नहीं करने देती थी। राजेंद्र जी मैत्रेयी पुष्पा से यह बताते हैं तो देखें, दोनों में क्या संवाद होता है। राजेंद्र जी, काश प्रेम भी बूढ़ा हो जाया करता। अरे, मार दिया डॉक्टरनी, तुम तो मुझे भी ज्ञान पढ़ा रही हो। सच्ची कह रही हैं, तभी अपने रिश्तों पर सचेत होते हुए लेखिका लिखती हैं, 'प्यार-मोहब्बत की बातों के चलते, बढ़ते या खुलते-खुलते इतनी न खुल जाए कि सुनते हुए कहीं छिप जाने का दिल करे।' (पृष्ठ 35)

राजेंद्र यादव में कई अवगुण थे, या सार्वजनिक रूप से यह धारणा बनी हुई थी कि वे परिवार विरोधी हैं, पत्नी को सताने वाले और बेटी का खयाल न रखने वाले हैं। लेकिन इस शख्स को मैंने अपना राजदार बनाया। मैत्रेयी पुष्पा इस सफर की खोज में अपने उपन्यास के रचना क्रम को भी इस सफर से जोड़ती चलती हैं। एक जगह तो वे सामर्थ्य भर उनके और अपने बीच प्रेम का पौधा रोपा और विकसित किया, वे उन्हें वटवृक्ष भी बताती हैं।

क्या मैत्रेयी पुष्पा और राजेंद्र यादव के रिश्ते सार्त्र और सिमॉन द बउआर की तर्ज पर थे? राजेंद्र जी विवाह को जिंदगी की फ्लैक्सिबिलिटी को खत्म कर देने वाला मानते थे और तभी तो विवाहित जीवन में घुटन और अवसाद के मौके पैदा होते हैं। (पृष्ठ 47) मैत्रेयी पुष्पा प्यार को एक नैसर्गिक भावना के रूप में स्वीकार करती हैं और विवाह को सामाजिक जिम्मेदारी और विवाह बनाम प्यार को मन्नू बजाय मीता के बरबक्स देखती हैं। मीता का नाम न उन्होंने और न मैत्रेयी पुष्पा ने सार्वजनिक किया, 'राजेंद्र जी की यह कायरता चरम पर है। शादीशुदा जिंदगी ने उन्हें अपने शिकंजे में ऐसा कसा है कि सिर उठाने तक का साहस नहीं। जिसका नाम फख्र से लेना चाहिए था, उसको छिपाकर क्या सिद्ध किया? क्या आपका दांपत्य उसकी प्रेम तपस्या से भयभीत होने लगा? या आपको अपनी शादी प्रेम की हिलती-डुलती कीली पर टिकी महसूस होती रही? मैत्रेयी पुष्पा इस पुस्तक में प्रेम को गुनाह नहीं मानती हैं पर लुका-छिपी का खेल नहीं मान वे बेईमानी के पर्दे के खिलाफ हैं। (पृष्ठ 74)

पर असल और विद्रोही मैत्रेयी पुष्पा का रूप इस सफर के अंत में महात्मा गाँधी हिंदी विश्वविद्यालय के उपकुलपति द्वारा 'नया ज्ञानोदय' पर दिए गए एक विवादास्पद साक्षात्कार जिसमें विभूति नारायण राम हिंदी लेखिकाओं पर अभद्र टिप्पणियाँ करते हैं और लेखिकाओं को 'छिनाल' कहते हैं, से होती है। वे राजेंद्र जी से काफी दूर चली जाती हैं और अपने गुरु के खिलाफ अकेली खड़ी हो जाती हैं और इस प्रसंग में लगता है कि वे राजेंद्र यादव से बहुत ऊँची, आदर्शवादी और सही मुद्दे से जुड़ी लगती हैं। वे राजेंद्र यादव से परास्त होती नजर नहीं आती बल्कि उन्हें पराजित करती हैं। उन्हीं के तर्कों से, उनकी ही ट्रेनिंग से, आपने निडर होना सिखाया है। निर्णय लेने की सीख दी। उस साहस तक ले गए जिसकी हमने अपने गृहस्थ जीवन में रहते कल्पना तक नहीं की थी। (पृष्ठ 97)

यह अनबन ज्यादा नहीं चली पर दरार तो पड़ गई। बाद की मार्मिक मुलाकात के वर्णन के बाद राजेंद्र के मृत्यु समाचार से मैत्रेयी टूट जाती हैं, पर यह पुस्तक रिश्ते के माधुर्य की बयानी करती है। उसे मधुर बनाती है।

समीक्षक : **कमलेश भारतीय**

लेखक : **गिरधारी लाल व्यास**

प्रकाशक : सर्जना प्रकाशन, बीकानेर

पृष्ठ : 160

मूल्य : रु. 120/-

प्रतीक पूजा का प्रपंच

भारत देवी-देवताओं का देश है या कि विज्ञापनी बाजार और मीडिया ने इसे बना दिया है? गिरधारी लाल व्यास ने भूमिका में स्पष्ट किया है कि यहाँ देवियाँ हैं, देवता हैं। देवी-देवता जल के भी हैं, जल में भी हैं, थल के भी हैं और थल में भी हैं, भूतल के भी हैं और भूतल में भी हैं। ये देवी-देवता जन-साधारण के मन में भी हैं और मस्तिष्क में भी। इसके विपरीत यदि कोई स्वतंत्र, प्रतिभावान, पाखंड-प्रपंच विरोधी हुआ, यथा स्थिति मंजक हुआ और किसी निहित स्वार्थों का भंडाफोड़क हुआ, तो वह कितना ही भला हो, उसके साथ उपेक्षित, घृणित, अवांछित अथवा दानव का व्यवहार किया जाता है। उसके खिलाफ अनर्गल प्रचार किया जाता है। यही अंधविश्वास भारत के जनमानस के जहन और क्रियाकलाप को जकड़े हुए है। इन प्रपंचों से, पाखंडों से मुक्त कराना ही लेखक का उद्देश्य है। इसीलिए पुस्तक के बिलकुल अंतिम पृष्ठ पर शहीद भगत सिंह की पुस्तिका 'मैं नास्तिक क्यों हूँ?' का और जूलियस फ्यूचिक की पुस्तक 'फाँसी के तख्त से' के अंश दिए गए हैं।

प्रतीक पूजा से समय-समय पर राजा, सामंत, कबीलों के सरदार और बड़े लोग निम्न वर्ग को इसी अंधविश्वास में जकड़े रहे। समय आ गया है कि इन प्रपंचों से बचा जाए, मुक्ति पाई जाए। इस पुस्तक में यह भी स्पष्ट किया गया है कि कैसे अवतारवाद का जन्म हुआ और वर्धमान महावीर और महात्मा बुद्ध तक को भी अवतार की श्रेणी में रख दिया गया।

हमारा समाज काफी समय तक मातृसत्तात्मक समाज रहा लेकिन जैसे ही हल का आविष्कार हुआ, वैसे ही सारी सत्ता पुरुष के हाथ में आ गई। अब पुरुष नारी को दासी, विज्ञापन की मॉडल या अन्य रूपों में प्रस्तुत कर रहा है। बुद्ध, वर्धमान महावीर, ईसा मसीह और हजरत मुहम्मद पैगंबर पर अलग से प्रकाश डाला गया है जबकि मिथक और दर्शन, मिथक और संघर्ष जैसे अध्याय भी हैं। मिथक की घटनाओं को प्रमाणित करने की माँग नहीं उठती जबकि दार्शनिक अवधारणा को कार्य-कतृण की कसौटी पर कसना पड़ता है। ध्यान देने योग्य बात है कि देव कथाओं ने उतना असर धनिकों में पैदा नहीं किया, जितना निर्धनों में। गरीबों के अपने-अपने देवता हैं। अपनी तरह की उनकी कथाएँ, आदिवासियों, जनजातियों ने अपने-अपने देवता बना लिए हैं। हरेक के पीछे अपने-अपने तरीके की दंत कथाएँ हैं।

लेखक ने इसीलिए व्यंग्यपूर्वक कहा है कि देखते-देखते अन्यान्य नए-नए देवता उभरते जा रहे हैं। इससे यह तो भली भाँति साबित हो रहा है कि इस पृथ्वी पर सबसे ज्यादा भगवान और देवता पैदा करने की क्षमता यदि किसी देश में है तो वह एकमात्र भारत है। जनसंख्या नियंत्रण पर कोई वश नहीं परंतु नए-नए देवी-देवताओं के उभरने पर तो ऐसी पुस्तकें ही सावधान कर सकती हैं। देवी-देवता बनने के लिए अनेक तरह के मुखौटे लगाते हैं, किस्म-किस्म की पोशाक पहनकर, चुपड़ी-चुपड़ी बातें करने वालों को देवी-देवता न बनाइए। अपनी आँखें खोलिए और सजग हो जाइए। अंधविश्वास के कुएँ से बाहर निकलने के लिए यह पुस्तक बहुत सीख देगी।

नेपथ्य से तुम

(कविता-संग्रह)

समीक्षक : **आरती स्मित**

लेखिका : **निशा कुलश्रेष्ठ**

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन जयपुर-302006

पृष्ठ : 108

मूल्य : रु. 100/-

सर्वप्रथम कवयित्री निशा कुलश्रेष्ठ को इस कविता-संग्रह 'नेपथ्य से तुम' के लिए बधाई।

यह संग्रह प्रेम से उपजे अनेक बिंबों को अनेक आयामों में अभिव्यक्त कर पाने में सक्षम है।

इस संग्रह की आरंभ से लेकर लगभग आधी यात्रा प्रेमपरक कविताओं के साथ होती है। आधी में परिवार के अन्य सदस्य या समाज आता है। कवयित्री की 'स्व' से 'पर' तक की यात्रा में ज्वार-भाटा महसूसा जा सकता है। कुछ कविताएँ भाव एवं कला—दोनों पक्षों की दृष्टि से समृद्ध हैं, कुछ कविताएँ दोनों पक्षों में टूटती हैं। कहीं भाव बनते-बनते, लय के टूटने से टूट गए हैं तो कहीं व्याकरणिक दोष रस सोख लेता है। शब्द-चयन और उठान में निशा जी का कौशल दिखता है, इसलिए कुछ कविताओं में जो भूलें रह गईं, संभवतः उन कविताओं को टंकण के पश्चात् भली भाँति देखा न गया होगा, या अन्य किन्हीं कारणों से भी यह संभव है। यों भी रचना निज मन की संपत्ति होती है, किंतु जब वह पाठकों के हाथ होती है तो निजत्व की कोई गुंजाइश नहीं बचती और तभी बात आती है, किसी बिंदु पर तादात्म्य की—कवि-मन से पाठक-मन के एकाकार होने की।

बतौर पाठक मुझे इन कविताओं में कुछ अलग-अलग रंग दिखे, उनमें से एक रंग प्रेम-पीड़ा से संतप्त विरहन के इंतजार, अतीत में उसके भटकाव, वर्तमान में उस संबंध को लेकर मीमांसा का है। इन कविताओं में प्रेमाभिमान, स्वाभिमान, तड़प, स्मृतियों की दुहाई, तृषित विकल नेत्रों में व्याप्त दीर्घकालिक इंतजार भी है। यह इंतजार प्रेमिका का नहीं, मानिनी किंतु भावुक पत्नी का है, जो विवाह पूर्व के सुखद पलों और विवाह के पश्चात् की बासंती यादें पति से साझा करना चाहती है। टूटन, घुटन और नैराश्य के बीच भी कविता अपनी पगडंडी बनाती चलती है। 'सुनो माधव', 'माधव', 'पलाश के रंग', 'तुम्हारी याद', 'इंतजार', 'धरती आसमान', 'मेरी कविता', 'संवाद', 'पहला प्रेम पत्र', 'तुम्हें पुनः खोज लेना', 'प्रतीक्षा में', 'हम बचे रहेंगे', 'टूट जाने का डर', 'तितलियों से रंग', 'कैसे मिटाओगे मुझे'

और कुछ क्षणिकाएँ, जैसे—'रंग केसरिया', 'तुमसे न होगा' इसी श्रेणी की कविताएँ हैं। 'रंग केसरिया' में प्रेम का उदात्त रूप प्रस्फुटित है तो 'तुमसे न होगा' और माधव में व्यथित स्त्री मन के उलाहना के स्वर गुंफित हैं।

तुम्हारा प्रेम अब सहलाता नहीं
एक सूखा ताल बन रहा है
मन के उजाड़ वन में
बरसो या पाट दो *(माधवी)*

कुछ कविताएँ परिवारगत भावनाओं, संबंधों के बीच पनपते संचारी भावों से सराबोर रंगों का गुंफन हैं। 'मेरी यादों का गुच्छा', 'इन दिनों', 'क्या पिता तुम आओगे?', 'बरगद', 'एक दीवार गिरी' पिता को समर्पित कविता है तो 'माँ', 'माँ के दुःख', 'उम्र के तीसरे पहर में' माँ के एकाकीपन और उनकी पीड़ा की करुण और मर्मस्पर्शी व्यंजना है। 'एक टुकड़ा आँगन' और 'मेरी यादों का गुच्छा' मायके में बिताए लम्हों को धरोहर की तरह स्मृति में सँजो लेने की उत्कट आकांक्षा का प्रारूप है। कुछ कविताएँ परिवार की परिधि पार कर समाज तक पहुँची हैं। 'छलावा' और 'मजदूर का बेटा' श्रमिक के कठिन जीवन की गाथा है तो 'तुम्हारे पाँव' उच्च वर्ग की शोषक प्रवृत्ति की ओर इशारा करती है। 'उदास शाम' की दोनों कविताएँ नैराश्य से उपजी हैं। कुछ कविताएँ ईश्वर की सत्ता को बिंबित करती हैं। कुछ कविताओं से मन मिला नहीं, मगर हाँ, 'अँधेरे टूटते भी हैं' और 'आँखों की नमी' क्षणिका सकारात्मकता प्रदान करती हुई इस यात्रा का सुखद समापन करती है।

कवयित्री का आत्मकथ्य... 'मान लें वह बात मेरे मन की ही है... यूँ भी मन की कोई थाह भी नहीं, ना ही कोई सीमा' की पुष्टि करते हुए उन्हें शुभकामनाएँ कि भविष्य में भी उनकी लेखनी चलती रहे और 'स्व' की परिधि से निकल सामाजिक, राष्ट्रीय और वैश्विक प्रसंगों को व्यापक फलक पर अभिव्यक्त करें।

साहिर लुधियानवी : मेरे गीत तुम्हारे

समीक्षक : **कल्लोल चक्रवर्ती**

लेखक : **सुनील भट्ट**

प्रकाशक : स्टार पब्लिकेशंस प्रा.लि., आसफ अली मार्ग, नई दिल्ली

पृष्ठ : 168

मूल्य : रु. 195/-

साहिर लुधियानवी एक ऐसे साहित्यकार रहे हैं, जिन्हें किसी बँधे-बँधाए फ्रेम में नहीं रखा जा सकता। साहिर एक कवि हैं, उन्होंने अनेक शानदार नज़्म लिखी हैं; उनके प्रेम के बारे में बहुत सारी बातें आज भी कही जाती हैं, और वह एक गीतकार रहे हैं। साहिर की खुद्दार शख्सियत, उनकी कविताओं, उनके प्रेम, उनकी विचारधारा और उनके गीतकार स्वरूप पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। सुनील भट्ट की यह किताब साहिर के कुछ अनछुए प्रसंगों को सामने लाती है।

फिल्मी गीतकार के तौर पर साहिर की सफलता का राज यह है कि उन्हें हर तरह के गीत लिखने में महारत हासिल थी। अगर वह, 'वहम से भी जो नाजुक हो वो यकीं लगती हो' या 'हम चले जाते हों और दूर तलक कोई नहीं/ सिर्फ पत्तों के चटखने की सदा आती है'—जैसे गीत लिख सकते थे, तो 'जब एक अनोखी दुनिया की बुनियादी उठाई जाएगी/वो सुबह कभी तो आएगी' जैसे सामाजिक गीत भी लिख सकते थे। 'तू हिंदू बनेगा ना मुसलमान बनेगा/इंसान की औलाद है इंसान बनेगा'—अगर मजहब के नाम पर भेद पैदा करने वाली मानसिकता के खिलाफ एलान बनकर खड़ा है, तो 'बाबुल की दुआएँ लेती जा/जा तुझको सुखी संसार मिले' सबसे ज्यादा गाए जाने वाले विदाई गीत के रूप में मशहूर है।

लेखक ने साहिर के प्रेम गीतों के बारे में जो लिखा है, वह ध्यान देने लायक है। वे कहते हैं कि 'इश्क में लोकतांत्रिक रवैया' और 'बेवफाई के कॉनसेप्ट से परहेज' साहिर के प्रेम गीतों की खासियत है।

सुनील भट्ट की यह किताब साहिर के फिल्मी गीतकार रूप पर सिर्फ केंद्रित ही नहीं है, बल्कि वह इस संदर्भ में ऐसे अनेक निष्कर्ष सामने ले आते हैं, जिनके बारे में इससे पहले संभवतः इतनी व्यापकता में ध्यान नहीं गया था। मसलन, हिंदी फिल्मों में शायद ही कभी ऐसा हुआ होगा कि कोई निर्देशक किसी की ग़ज़लों और नज़्मों का संकलन पढ़कर इतना प्रभावित हुआ हो कि उस पर फिल्म बनाने के बारे में सोचे। गुरुदत्त की 'प्यासा' इसका उज्ज्वल दृष्टांत है। यह फिल्म इसके गीतों के कारण सफल हुई, इसका प्रमाण इससे भी चलता है कि इस सफलता का श्रेय लेने के लिए संगीतकार सचिन देव बर्मन और साहिर लुधियानवी में अनबन हुई।

साहिर ने गीतकारों के हक के लिए जितनी लड़ाई लड़ीं और जीतीं, उसका भी मुंबई के फिल्मोद्योग में दूसरा उदाहरण नहीं है। उन्होंने यह शर्त रखी कि फिल्म के संगीतकार को मेरे लिखे गीत पर धुन बनानी होगी, पहले से बनी धुन पर मैं गीत नहीं लिखूँगा। यह आत्मसम्मान का शिखर था। यही नहीं, उनकी शर्त यह भी थी कि चूँकि गीत में धुन से ज्यादा महत्त्व शब्द का होता है, इसलिए गीतकार को संगीतकार से अधिक पैसा मिलना चाहिए, चाहे वह एक रुपया ज्यादा ही क्यों न हो। यह संगीतकारों को सीधे-सीधे चुनौती थी। चोपड़ा बंधुओं (बी.आर. और यश) ने इन शर्तों के बाद भी अगर साहिर को अपनी फिल्मों में लिया, और नौशाद तथा शंकर-जयकिशन के साथ काम करना मंजूर नहीं किया, तो यही अपने आप में एक गीतकार के तौर पर साहिर की क्षमता बताने के लिए काफी है। यह अलग बात है कि इस कारण हिंदी फिल्मोद्योग साहिर और नौशाद के जादू को एक साथ महसूस करने से वंचित रह गया। इसी तरह फ्योदोर दोस्तोएवस्की के उपन्यास 'क्राइम एंड पनिशमेंट' पर 'फिर सुबह होगी' फिल्म का गीत लिखते हुए साहिर ने शर्त रखी कि इस फिल्म का संगीत वही लिखे, जिसने यह उपन्यास पढ़ा और समझा हो। इस तरह खय्याम को मौका मिला। 'कभी-कभी' फिल्म के लिए धुन बनाते हुए खय्याम ने इसका ध्यान रखा था कि इसके गीत अपनी धुन के बजाय बोलों से पहचाने जाएँ। यानी फिल्मी

गीतों में भी उसकी मौलिकता को बरकरार रखने की साहिर की भावना बहुत कुछ बता देती है। इतना ही नहीं, रेडियो पर गाने प्रसारित होते हुए आज अगर गीतकार का नाम लिया जाता है, तो वह भी साहिर के कारण ही संभव हो पाया। जब साहिर को फिल्म राइटर्स एसोसिएशन का वाइस प्रेसीडेंट चुना गया, तो उन्होंने ख्वाजा अहमद अब्बास के साथ मिलकर गीतकारों को इज्जत दिलाने का बीड़ा उठाया और इसमें सफल रहे।

सुनील भट्ट बताते हैं कि 'प्यासा' और 'फिर सुबह होगी' के जरिए साहिर फिल्मी गीतों को उस साहित्यिक ऊँचाई पर ले जाने में सफल हुए, जिसकी उन्हें अपेक्षा थी। लेखक ने गीतकार साहिर को उनके व्यापक साहित्यिक रूप में न सिर्फ देखा, बल्कि उनकी कई विशेषताओं को सामने भी ले आए।

साहिर साहित्यिक प्रतिभा के जितने धनी थे, फिल्मी गीतकार के तौर पर भी वह उतने ही शानदार और सफल रहे, तो यह अपने आप में एक बड़ी बात है। ऐसा इसलिए क्योंकि मुंबई के फिल्मोद्योग में बड़े से बड़े साहित्यकारों को विफल होते और वहाँ से लौटते देखा गया। साहिर सफल इसलिए हुए, क्योंकि उनमें धुनों के हिसाब से गीत लिख पाने की क्षमता थी, जबकि एक बेहतर गीतकार के लिए फिल्मी धुनों के साथ तालमेल बिठाना कठिन ही होता है।

यह किताब बताती है कि साहिर ने फिल्मों के लिए गीत लिखते हुए कई बार अपनी पुरानी नज़्मों को दोबारा लिखा, कहीं उनमें कुछ जोड़ा, तो कुछ अनावश्यक प्रसंग हटाए भी। उन्होंने अपनी कई मूल उर्दू ग़ज़लों, नज़्मों को आसान शब्दों में दोबारा लिखा। उन्होंने कभी इनके पहले शेर को काम में लिया, कभी आखिरी शेर को, तो कभी बीच के किसी शेर को लेकर उसके इर्द-गिर्द ही गीत बुन दिया। साहिर के बारे में सुनील भट्ट द्वारा दी गई यह जानकारी इस किताब को खास बनाती है।

साहिर के लिए मनुष्य की बेहतरी सबसे बड़ी चिंता थी। लेकिन एक गीतकार के रूप में फिल्मों की जरूरत के हिसाब से उन्होंने हर तरह के गीत लिखे। सुनील भट्ट ने यहाँ उनके लिखे भजनों पर विचार किया है। उन्होंने फिल्मों के लिए कई यादगार भजन लिखे, चाहे वह 'तोरा मन दरपन कहलाए' (काजल) हो या 'अल्लाह तेरो नाम ईश्वर तेरो नाम' (हम दोनों)। 'हम दोनों' के इस भजन पर लेखक ने कला समीक्षक यतींद्र मिश्र की टिप्पणी उद्धृत की है कि फिल्म संगीत के तमाम विद्वानों ने इस गीत को भारतीय फिल्म संगीत का सबसे महत्त्वपूर्ण भजन या हमारी समन्वयवादी छवि का नेशनल एंथम माना है। सुनील भट्ट ठीक ही कहते हैं कि साहिर लुधियानवी ने गीत लिखने के साथ-साथ फिल्मी गीतकारों का स्तर ऊपर उठाने में भी मदद की।

प्रेमचंद : कुछ संस्मरण

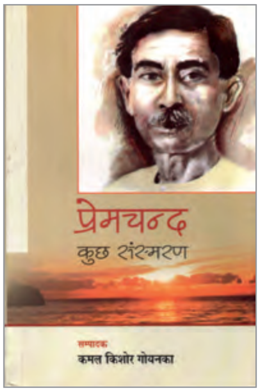

समीक्षक : **कृष्ण वीर सिंह सिकरवार**

संपादक : **डॉ. कमल किशोर गोयनका**

प्रकाशक : सामयिक प्रकाशन, दरिया गंज, नई दिल्ली-110002

पृष्ठ : 192

मूल्य : रु. 400/- (सजिल्द)

मई 1937 में प्रेमचंद की मृत्यु के लगभग आठ माह पश्चात् 'हंस' पत्रिका का 'प्रेमचंद स्मृति अंक' प्रकाशित होता है। 'हंस' के इस अंक का संपादन बाबूराव विष्णु पराड़कर ने किया था। प्रेमचंद स्मृति अंक में उस समय के विद्वान् लेखक व प्रेमचंद के समकालीन साहित्यिक मित्रों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से एक साहित्यिक अश्रुपूरित श्रद्धांजलि अर्पित की थी। इस अंक में लगभग 46 लेखकों के ज्ञानवर्धक संस्मरण संकलित किए गए थे। यह अंक आज भी अपनी बहुमूल्य सामग्री के कारण साहित्य जगत् में अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

डॉ. कमल किशोर गोयनका आज किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं, उन्होंने जितनी व्याख्याएँ व मान्यताएँ प्रेमचंद साहित्य के संदर्भ में प्रस्तुत की हैं, आज वर्तमान लेखकों व आलोचकों में से कोई भी उनके द्वारा स्थापित मान्यताओं को चुनौती नहीं दे सकता है। वे समग्र रूप से प्रेमचंद साहित्य के प्रति समर्पित रचनाकार हैं।

'प्रेमचंद : कुछ संस्मरण' डॉ. गोयनका के संपादन में अभी हाल ही में सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित नवीन पुस्तक का नाम है। इस पुस्तक का प्रेमचंद के जीवन व साहित्य से गहरा संबंध है, क्योंकि इस पुस्तक में जितने भी लेखकों ने संस्मरण लिखे हैं, उन्होंने प्रेमचंद के जीवन व साहित्य के उन पक्षों की विस्तृत चर्चा की है जिनसे पाठक अभी तक अनभिज्ञ था।

'प्रेमचंद : कुछ संस्मरण' मई 1937 में प्रकाशित 'प्रेमचंद स्मृति अंक' से इस मायने में भी अपना एक अलग स्थान रखती है कि इसमें प्रेमचंद स्मृति अंक में प्रकाशित संस्मरण के अलावा नवीन संस्मरणों को संकलित किया गया है। यह समस्त संस्मरण डॉ. गोयनका ने कई वर्षों के कठिन परिश्रम व अपनी खोजी प्रवृत्ति से खोज निकाले हैं।

इस पुस्तक में 28 लेखकों व मित्रों के संस्मरण संकलित किए गए हैं। पुस्तक में संकलित संस्मरणों के संदर्भ में डॉ. गोयनका कहते हैं कि 'इन संस्मरणों के लेखक हिंदी और उर्दू के प्रसिद्ध साहित्यकार हैं तथा सभी व्यक्तियों का प्रेमचंद के साथ निकट का संपर्क, सहयोग एवं साहचर्य रहा है। पुस्तक में संकलित संस्मरणों में प्रेमचंद के जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन हुआ है। उनके व्यक्तित्व की एक झाँकी इन संस्मरणों से प्राप्त होती है। इनमें से कुछ संस्मरण प्रेमचंद के देहावसान से पूर्व तथा कुछ तुरंत बाद और कुछ संस्मरण देहावसान के अनेक वर्षों के उपरांत लिखे गए थे, लेकिन कुछ संस्मरण ऐसे हैं, जो मेरे आग्रह पर लिखे गए हैं।' (भूमिका)

'प्रेमचंद : कुछ संस्मरण' का वर्तमान में द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक का प्रथम संस्करण सरस्वती विहार, नई दिल्ली से वर्ष 1980 में प्रकाशित हुआ था। यह पुस्तक वर्षों से अप्राप्य थी तथा पाठकों एवं शोधार्थियों के बीच निरंतर इस पुस्तक की माँग बनी हुई थी। इसी कमी को पूरा करती अब यह पुस्तक पाठकों के समक्ष उपलब्ध है। आशा है

भविष्य में यह पुस्तक पाठकों व शोधार्थियों के बीच संस्मरणों के संदर्भ में नए मूल्य स्थापित करेगी।

इस पुस्तक में अमृतराय, इकबाल बहादुर देवसरे, उपेंद्रनाथ अश्क, ऊषादेवी मिश्रा, ऋषभचरण जैन, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', श्रीमती कमला देवी, केशरी किशोर शरण, चतुरसेन शास्त्री, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, जनार्दन राय नागर, जैनेंद्र कुमार, ज्ञानचंद्र जैन, ठाकुर श्रीनाथ सिंह, देवेंद्र सत्यार्थी, दुर्गादत्त त्रिपाठी, परिपूर्णानंद वर्मा, प्रभाकर माचवे, बनारसी दास चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', भँवरलाल सिंधी, मन्मथनाथ गुप्त, रसीद अहमद सिद्दीकी, रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी', वीरेंद्र कुमार जैन, शिवपूजन सहाय, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', हरिवंश राय बच्चन आदि ने प्रेमचंद का मूल्यांकन व स्मरण किया है।

समग्रतः कहा जा सकता है कि प्रेमचंद सरीखे महान रचनाकार को पूरी तरह से समझने में यह पुस्तक सदा एक बड़ा सहारा बनेगी। प्रेमचंद के अन्यतम अध्येता और अनुसंधानकर्ता डॉ. कमल किशोर गोयनका ने पहली बार इसमें अनेक संस्मरणों की खोज की और उसे हिंदी में पाठकों के बीच रखा। यह पुस्तक एक प्रकार से प्रेमचंद के समकालीन लेखकों का उनका मूल्यांकन है, जो उनकी स्मृति के साथ जुड़ा हुआ है। प्रेमचंद की स्मृति को जीवित रखने के लिए इस पुस्तक का हमेशा उपलब्ध रहना आवश्यक है। हिंदी में ऐसी बहुत कम पुस्तकें हैं जो संस्मरण व मूल्यांकन एक साथ करती हों। प्रेमचंद के नए अध्येताओं के लिए यह स्थायी महत्त्व की पुस्तक है। आशा है, वर्तमान और भावी पीढ़ियाँ प्रेमचंद को जानने-समझने के लिए इस पुस्तक को अपने साथ रखेंगी।

समीक्षक : **दीपक मंजुल**

लेखिका : **अलका सिन्हा**

प्रकाशक : किताबघर प्रकाशन, दरिया गंज, नई दिल्ली-110002

पृष्ठ : 176

मूल्य : रु. 300/- (सजिल्द)

जी-मेल एक्सप्रेस

'जी-मेल एक्सप्रेस'—नाम कुछ ऐसा है मानो कोई एक्सप्रेस ट्रेन। लेकिन नहीं, इस शब्द का अन्वय कुछ और ही है जो उपन्यास में कहीं बाद में जाकर खुलता है। उपन्यास में देवेन त्रिपाठी का घर, दफ्तर और डायरी तीन समानांतर धाराओं के साथ बढ़ता है। इसमें देवेन त्रिपाठी को मिली नीली डायरी है, जिसे डी-कोड करने के उपक्रम में बहुत कुछ डी-कोड होता चलता है तो बहुत कुछ डी-कोड होने से रह जाता है। जीवन की किताब भी तो ऐसी ही है—जितना खुलती है, उससे अधिक अनखुली रह जाती है।

उपन्यास का कंटेंट आधुनिक महानगरीय समाज के अँधेरे में गुपचुप पल और चल रहे उस विकृत धंधे को केंद्र में लाता है जिसे सामान्य तौर पर यौन व्यापार की संज्ञा दी जाती है, लेकिन किसी स्त्री द्वारा पुरुष ग्राहक से अपनी यौन शुचिता बेचने की उस रूढ़ व्यवस्था के उलट, यहाँ एक पुरुष द्वारा किसी यौन बुभुक्षित स्त्री को अपना कौमार्य बेचने को उपन्यासकार ने अपने उपन्यास की केंद्रीय धुरी बनाया है। वह पुरुष जो अपना तन बेचकर अपनी आजीविका चलाता है, 'जिगोलो' कहलाता है। जिगोलो यानी पुरुष वेश्या की दुनिया के अनेक अनखुले झरोखे बड़ी बेबाकी से यहाँ खुलते हैं, लेकिन भाषा की गरिमा कहीं भी मर्यादा की चौहद्दी का अतिक्रमण करती नहीं दीखती। यह लेखिका की उपलब्धि है और उपन्यास की ताकत भी।

इस उपन्यास में एक स्त्री रचनाकार द्वारा पुरुष वेश्या के मनोविज्ञान को बड़ी ही खूबसूरती से परत-दर-परत खोला गया है और इसी क्रम में स्त्री यौन मनोविज्ञान का चित्रण भी बखूबी दृष्टिगत होता है। पुरुष वर्चस्व की इस दुनिया में जहाँ यौन प्रसंग जैसे दबे-ढके विषय पर लेखनी चलाना अधिकतर पुरुष लेखक का ही 'एकाधिकार' माना जाता था, विगत कुछ दशकों से स्त्री रचनाकारों ने इस मिथक को तोड़ा है और आज तो वे यौन लेखन के मैदान में मानो खम ठोककर खड़ी हैं। पुरुष एकाधिकार को तोड़ने के क्रम में कुछ स्त्री रचनाकार उद्दाम वेग के साथ बह चलीं और पोर्न लेखन के समंदर में गोते लगाने लगीं। ऐसे में सामान्य पाठक के मन में यह प्रश्न उठना सहज स्वाभाविक है कि 'ऐसे' कंटेंट पर लेखिका भी क्या 'ऐसा-वैसा' लिखने से बच पाई होंगी? इस प्रश्न के संबंध में पहले ही जिक्र किया गया है कि लेखिका पूरे उपन्यास में कहीं भी भाषा की गरिमा की लक्ष्मण रेखा से बाहर नहीं जाती हैं। स्त्री-देह में पुरुष प्रवेश जैसे प्रसंगों को भी लेखिका अपने लेखन कौशल से उत्तेजक होने से बचा ले गई हैं। कहना जरूरी है कि निश्छल नदी के कलकल बहाव-सी सतत प्रवाही और रवानगी वाली भाषा इस उपन्यास का सौंदर्य ही नहीं, शक्ति और सौष्ठव भी है।

बहरहाल, उपन्यास एक ऐसा कोलाज है जिसमें दफ्तर की जिंदगी है, पारिवारिक रस्साकशी है, भागमभाग है; एक नीली डायरी है, उसके काल्पनिक (या वास्तविक) पात्र हैं, महानगरीय जीवन की यौन कुंठाएँ हैं, 'जिगोलो' की रहस्यमयी दुनिया है, शरीर की माँग और मन का विचलन है; टूटने का दर्द और जुड़ने का उल्लास है, अध्यात्म की तलाश है। उपन्यास का 'मैं' देवेन त्रिपाठी है। त्रिपाठी भारतीय दफ्तर का वह आम चेहरा है जिसे किसी भी दफ्तर में आसानी से ढूँढ़ा जा सकता है। उसकी कामकाजी पत्नी विनीता और लड़कियों से दूर रहने वाला शर्मीला बेटा अभिषेक है। दफ्तर में पूर्णिमा सूद, मिसेज विश्वास, सोनिया, गीतिका जैसी अलग-अलग स्वभावों वाली स्त्रीकर्मी हैं तो चरित, परमार, सेनगुप्ता, अमनदीप जैसे पुरुषकर्मी भी। देवेन त्रिपाठी दिल्ली के दरियागंज की पटरियों पर बिकने वाली पुस्तकों के ढेर में से संयोगवश किसी की पर्सनल डायरी खरीदकर ले आया था जिसमें जहाँ-तहाँ आधे-अधूरे अक्षरों में टँके नोट्स थे जिसे डी-कोड करने की कोशिश में वह क्वीना, रोहन, कुणाल, निकिता, समीर आदि सरीखे अनेक काल्पनिक पात्रों को जन्म देता चलता है। देवेन और क्वीना की काल्पनिक दुनिया उपन्यास में काफी दूर तक समानांतर चलती रहती है। इस क्रम में देवेन के दफ्तर की राजनीति, षड्यंत्र, कनफुसकी, कर्मियों की कारगुजारियाँ और दुरभिसंधियाँ, रोमांच और रोमांस के किस्से भी चलते रहते हैं और चलती रहती है एक समानांतर कहानी डायरी वाली क्वीना की भी, जिसे देवेन ने अपनी कल्पना से डी-कोड किया होता है।

इसमें संदेह नहीं कि यह उपन्यास आधुनिक स्त्री के उस यौन पक्ष को नेपथ्य से बाहर निकालकर रंगमंच पर रखने का एक उपक्रम भी है जिसमें 'वीमेन ऑन टॉप' महज एक संकल्पना या फंतासी नहीं वरन् हकीकत के रूप में देखी जा सकती है। आखिर, जो स्त्री अपनी यौन बुभुक्षा की संतुष्टि

के लिए जिगोलो 'हायर' करती है, वह उस पुरुष का जैसे चाहे उपभोग करे, उसकी मर्जी। यहाँ ऊँचे पद वाली स्त्रियों का उन्मुक्त, उद्दाम और उच्छृंखल रूप सामने आता है जो ऊपरी तौर पर 'मिलनसार' और 'हँसमुख' हैं, मगर अंदर खाने वे सेक्स रैकेट की मजबूत कड़ी हैं।

दरसअल, 'जिगोलो' आज की महानगरीय सभ्यता का चीखता हुआ ऐसा सच है जिसकी जींस की जेब से लाल रूमाल लटकता रहता है और जिसके दाहिने हाथ में लाल रंग का ब्रेसलेट होता है और जो कीमत लेकर असंतुष्ट एवं यौनपिपासु स्त्रियों की कामवासना की उनकी मर्जी की सीमा तक तुष्टि करता है। जी-मेल का अर्थ यहीं पर खुलता है—जी यानी जिगोलो, मेल यानी पुरुष।

उपन्यास में स्त्री के दैहिक सुख से वंचित रह जाने के संबंध में अनेक प्रश्न तैरते दिखाई देते हैं जिसकी परिणति में 'जिगोलो' की उत्पत्ति होती है। ये प्रश्न ऐसे हैं जिससे एक पुरुष स्त्री को 'बदचलन' समझ सकता है, लेकिन क्या सचमुच में ऐसा है? एक लड़की अपने प्रेमी या एक स्त्री अपने पति से यौन संसर्ग में अगर पुरुष की तरह आर्गेज्म यानी चरमोत्कर्ष प्राप्त करना चाहती है तो इसमें बुरा या अस्वाभाविक क्या है? क्यों स्त्री की यौन माँग को प्रेम नहीं मानकर 'हवस' माना जाता है? क्या एक स्त्री की यौन छटपटाहट नाजायज है? उपन्यास में इन सब प्रश्नों की तलाश के क्रम में जिगोलोज के मुँह से जो बातें कहलवाई गई हैं, वह जिगोलोज की दुनिया को ही परत-दर-परत नहीं खोलतीं बल्कि स्त्री यौन मनोविज्ञान के तमाम गुप्त दरवाजे खोलकर रख देती हैं कि एक स्त्री क्यों और कैसे जिगोलो की 'सेवा' लेने को बाध्य होती है और यह भी कि वह एक पुरुष से बिछावन पर क्या और कितना चाहती है। जिगोलो जाँच अधिकारी के सामने प्रश्नों की झड़ी लगा देता है। वह पूछता है—सारा आदर्श, सारी मर्यादा सेक्स पर ही आकर क्यों ठहर जाती है? चारित्रिक दृढ़ता की आड़ में स्त्रियों को यौन सुख से वंचित रखने का क्या औचित्य है? अग्निपरीक्षाएँ औरतों के लिए ही क्यों? दफ्तर का धमेजा भी कुछ ऐसा ही प्रश्न उठाता है—भूख तो भूख है, इसमें पुरुष भूख या स्त्री भूख का क्या मतलब है?

देवेन के माध्यम से उपन्यास में नई स्त्री के बारे में उपन्यासकार अपनी अवधारणा कुछ यूँ बयाँ करती हैं—'वक्त बहुत बदल चुका है। अब लड़कियाँ पहले की तरह लजीली, शरमीली नहीं रहीं... वे तो हाथ में दोनाली बंदूक थामे तफरीह के लिए शिकार पर निकली दिखाई पड़ती हैं... वे सारा गणित उलट देना चाहती हैं। वे चाहती हैं कि अब पुरुष नीचे हों और वे ऊपर रहें... अब वे 'पैसिव पार्टनर' की तरह नहीं बनी रहना चाहतीं, बल्कि 'एक्टिव प्लेयर' होना चाहती हैं। उपन्यास में ऐसी महिला पात्रों का उल्लेख है जो एक्टिव प्लेयर हैं, क्योंकि वे स्वयं की दैहिक तुष्टि के लिए पुरुष वेश्या को 'हायर' करती हैं। उपन्यास में जिगोलो की दुनिया के बंद झरोखे जब खुलते हैं तो न जाने और भी कितने झरोखे खुद-ब-खुद खुलने लगते हैं, मसलन—वाइफ स्वैपिंग, पूल पार्टी, स्विमिंग सेक्स, रिफ्रेशिंग पार्टी, आरबीएस, प्रॉम नाइट, स्कलर्स नाइट, फिल्दी चौट और डेट आदि-आदि।

उपन्यास में जिस बात को प्रच्छन्न रूप से उठाया गया है और जो उपन्यासकार का ही एक प्रधान विचार पक्ष भी है, वह यह है कि शोषण सिर्फ लड़कियों का नहीं होता, लड़कों का भी होता है। केस से जुड़े मनोचिकित्सक डॉ. मधुकर युवकों की पीड़ा कुछ इस तरह व्यक्त करते हैं—'...लड़कों का शोषण भी लड़कियों के साथ हुए बलात्कार से कम घातक नहीं होता। लड़कों को भी वैसी ही मानसिक यातना से गुजरना पड़ता है...।' डॉक्टर आगे कहते हैं—'...और इस नाते मैं लड़के और लड़की के शोषण को अलग-अलग नहीं देखता। सिर्फ इसलिए कि लड़के गर्भधारण नहीं करते तो क्या उनकी यौन शुचिता का कोई अर्थ नहीं होता?'

उपन्यास में बच्चों के प्रति माँ-बाप की उस उदासीनता को भी रेखांकित किया गया है जिससे पैदा हुई नकारात्मकता व्यक्ति को जिगोलो समाज की तरफ धकेलने का एक कारण बनती है।

मेल प्रॉस्टीट्यूशन पर लिखा गया हिंदी का यह संभवतः पहला उपन्यास है। एक ऐसे विषय को जिसे समाज ने अब तक समस्या के रूप में स्वीकारा ही नहीं, उसे अपने उपन्यास में केंद्रीय घटना के रूप में प्रस्तुत करना, भोक्ता की मानसिक और मनोवैज्ञानिक तहों तक जाना, समस्या को देखने ही नहीं समझने और समझाने की कोशिश करना हिंदी कथा संसार का कदाचित् पहला उपक्रम ही लगता है। यह उपन्यास इस मायने में भी महत्त्वपूर्ण है कि इस विषय पर स्त्री लेखक द्वारा कलम चलाई गई है। उपन्यास का 'मैं' एक पुरुष है लेकिन उस 'मैं' को स्त्री रचनाकार संचालित कर रही है। यह भी उत्सुकता जगाने वाली बात है कि एक पुरुष के 'मैं' को एक स्त्री रचनाकार कैसे कमांड कर रही है। चूँकि लेखिका का यह पहला ही उपन्यास है, इसलिए भी उत्सुकता बढ़ जाती है। कविता और कहानी लिखने वाली लेखिका ने अपने पहले ही उपन्यास में तथाकथित 'बोल्ड' विषय को केंद्रीय विषय बनाने का जो जोखिम उठाया है, उसके मद्देनजर पाठकीय राय महत्त्वपूर्ण है वरना किसी लेखिका पर 'बोल्ड' का टैग चस्पा कर तिर्यक मुस्कान बिखेरने वाला यह पुरुष समाज इस उपन्यास की लेखिका पर भी ऐसा ही टैग चस्पा कर इस कृति की भी एक सुसंगत आलोचना से स्वयं को आसानी से अलग कर सकता है जो किसी संवेदनशील कृति के प्रति घोर अत्याचार ही माना जाएगा।

अश्वत्थामा :
महाभारत का शापित योद्धा

समीक्षक : **दीप्ति अंगरीश**

लेखक : **आशुतोष गर्ग**

प्रकाशक : मंजुली पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

पृष्ठ : 184

मूल्य : रु. 175/-

कोई व्यक्ति पूरे जीवन पुण्य करता है। अपने सिद्धांत पर कायम रहता है। उसे एक बेहतर परवरिश मिलती है। श्रेष्ठ शिक्षा मिलती है। लेकिन, एक गलती से उसका पुण्य उसके काम नहीं आता है। वह शापित हो जाता है। एक महान योद्धा के काम न तो उसका शस्त्र आता है और न ही शास्त्र। न तो संस्कार और न ही शिक्षा उसे बचा पाती है। पौराणिक इतिहास में अश्वत्थामा ऐसा ही व्यक्तित्व है। अमरत्व जहाँ औरों के लिए वरदान होता है, तो अश्वत्थामा के लिए वह शाप बन चुका है। महाभारत के इस शापित योद्धा को आशुतोष गर्ग ने अपनी लेखनी से उजागर किया है। वास्तव में, इसे नियति की विडंबना ही कहेंगे कि महाभारत की गाथा का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और अमर पात्र होने के बावजूद अश्वत्थामा सदा उपेक्षित रहा है। अधिकांश जगत् अश्वत्थामा को दुर्योधन की भाँति कुटिल और दुराचारी समझता है।

लेखक ने इस उपन्यास में अश्वत्थामा के जीवन के अनछुए पहलुओं को उजागर करते हुए, उस महान योद्धा के दृष्टिकोण से महाभारत की कथा को नए रूप में प्रस्तुत किया है। हिंदी के चर्चित और वरिष्ठ कवि डॉ. कुमार विश्वास कहते हैं कि साहित्य के कंधों पर यह जिम्मेदारी है कि विस्मृत नायक-नायिकाओं को पुनर्स्थापित करें। अश्वत्थामा इस श्रेणी में एक आवश्यक महनीय प्रयास है।

अश्वत्थामा को केंद्र में रखकर वैसी कोई पुस्तक अभी तक प्रस्तुत नहीं की जा सकी थी। आशुतोष गर्ग ने अश्वत्थामा को 'महाभारत का शापित योद्धा' कहकर पुकारा है। यही उनकी किताब का उपशीर्षक भी है। हम सभी जानते हैं कि अश्वत्थामा का अमरत्व उसको मिला एक अभिशाप था, जो अमरत्व के बारे में पूर्व-निर्मित रोमानी कल्पनाओं को ध्वस्त करता है। अश्वत्थामा इस संसार-चक्र का चिर नागरिक है और महाभारत के काल से आज तक घटित हुए अनेकानेक युगों का साक्षी रहा है। हम अश्वत्थामा को एक कालयात्री भी कह सकते हैं। श्रीकृष्ण ने अश्वत्थामा को अभिशाप दिया था, किंतु क्या उसका अपराध इतना बड़ा था भी? अश्वत्थामा की छवि एक कुटिल और दुराचारी नायक की बना दी गई है, जो कि दुर्योधन का सहयोगी था। लेकिन क्या यह सच है? आशुतोष गर्ग की किताब अश्वत्थामा से जुड़े इन अनेक कौतूहलों का संधान करती है।

अश्वत्थामा का अमरत्व वर्षों से अनेक मिथकों का हिस्सा रहा है। बचपन से ही हम अश्वत्थामा की अमरता की कहानियाँ सुनते आए हैं। कई बार समाचार-पत्रों, टीवी और सोशल मीडिया में यह भी उल्लेख मिलता रहा है कि अश्वत्थामा को कहीं देखा गया और उसकी पहचान महाभारत में वर्णित उसके जाति चिह्नों के आधार पर की गई। वैसे भी भारत का मन मिथकजीवी है और इस तरह के मिथकों में रमना उसको भाता है। इसके बावजूद जहाँ महाभारत के शेष पात्रों पर अनेक काव्य और गल्पकृतियाँ रची जा चुकी हैं, लेकिन अब तक इस महान योद्धा को साहित्यकारों ने उचित स्थान नहीं दिया था। आशुतोष गर्ग की पुस्तक अश्वत्थामा इस कमी को पूरा करती है और महाभारत के इस विस्मृत नायक को फिर से हमारी कल्पनाओं में जीवंत बना देती है। यह पुस्तक अश्वत्थामा के जीवन पर एक उपन्यास है, जिसे स्वयं अश्वत्थामा के दृष्टिकोण से यानी प्रथम पुरुष में लिखा गया है। किताब के पन्ने उलटते हुए बहुधा ऐसा जान पड़ता है इसमें गल्प की लय उतनी उभरकर सामने नहीं आ पाई है, जितनी कि अपेक्षा की जानी चाहिए। यदि आशुतोष गर्ग अन्य पुरुष में यह पुस्तक लिखने का प्रयास करते तो शायद एक अधिक वस्तुनिष्ठ आख्यान हमारे हाथों में होता। इसके बावजूद आशुतोष की किताब अश्वत्थामा के जीवन पर मिथकों, कथाओं, सच्चाइयों और कल्पनाओं का एक अनूठा संकलन है और पुस्तक के लिए किया गया गहन शोध इसके हर पन्ने पर झलकता है।

सच है कि युद्ध की कथा सदा निर्मम नरसंहार, निर्दोषों की हत्या और दुष्कर्मों की काली स्याही से ही लिखी जाती है। ऐसे में महाभारत जैसे महायुद्ध में अश्वत्थामा से ऐसे कौन-से दो अक्षम्य अपराध हो गए थे, जिनके लिए श्रीकृष्ण ने उसे एकाकी व जर्जर अवस्था में हजारों वर्षों तक पृथ्वी पर भटकने का विकट शाप दे डाला? उसके मन में यह सवाल उठता है कि श्रीकृष्ण ने इतना कठोर शाप देकर उसके साथ अन्याय किया या फिर इसके पीछे भगवान का कोई दैवी प्रयोजन था? क्या अश्वत्थामा के माध्यम से भगवान कृष्ण आधुनिक समाज को कोई संदेश देना चाहते थे? अश्वत्थामा को दुनिया खत्म होने तक भटकने का शाप देने वाले भगवान श्रीकृष्ण थे। यह शाप श्रीकृष्ण ने इसलिए दिया क्योंकि इसने पांडव पुत्रों की हत्या उस समय की थी जब वह सो रहे थे। इसने ब्रह्मास्त्र से उत्तरा के गर्भ को भी नष्ट कर दिया था। गर्भ में पल रहे शिशु की हत्या से क्रोधित होकर श्रीकृष्ण ने अश्वत्थामा को भयानक शाप दिया। अश्वत्थामा के इस घोर पाप का अनुचित लेकिन एक बड़ा कारण था।

हर अध्येता को यह पता है कि अश्वत्थामा द्रोणाचार्य के पुत्र थे। द्रोणाचार्य ने शिव को अपनी तपस्या से प्रसन्न करके उन्हीं के अंश से 'अश्वत्थामा' नामक पुत्र को प्राप्त किया। इनकी माता का नाम कृपा था जो शरद्वान की लड़की थी। जन्म ग्रहण करते ही इनके कंठ से हिनहिनाने की सी ध्वनि हुई जिससे इनका नाम 'अश्वत्थामा' पड़ा। महाभारत युद्ध में ये कौरव पक्ष के एक सेनापति थे। अठारह दिन तक युद्ध चलता रहा। अश्वत्थामा को जब दुर्योधन के अधर्मपूर्वक किए गए वध के विषय में पता चला तो वे क्रोध से अंधे हो गए। उन्होंने शिविर में सोते हुए समस्त पांचालों को मार डाला। द्रौपदी को समाचार मिला तो उसने आमरण अनशन कर लिया और कहा कि वह अनशन तभी तोड़ेगी, जब अश्वत्थामा के मस्तक पर सदैव बनी रहने वाली मणि उसे प्राप्त होगी।

पौराणिक प्रसंगों और कथानक पर एक पुस्तक का सृजन करना आसान नहीं होता है। आशुतोष गर्ग का पत्रकारिता और अनुवाद में स्नातकोत्तर डिप्लोमा करना उनके काफी काम आया। पौराणिक उपन्यासों में मराठी के शिवाजी सावंत, गुजराती के कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी और हिंदी में नरेंद्र कोहली ने जो लकीर खींची है, उस लकीर का अनुसरण करते हुए धीरे-धीरे पग बढ़ाना हर युवा रचनाकार के लिए दुरूह है। ऐसे में करीब 15 पुस्तकें लिखने का अनुभव आशुतोष गर्ग के काम आया। कुछ समय पहले ही मैंने 'दशराजन' पढ़ी थी। अशोक के. बैंकर को पढ़ना हर बार नया अनुभव होता है। उनके पास जो चित्रण शैली है, जिसे वे शब्दों के माध्यम से व्यक्त करते हैं और दृश्यों को सजीव बना देते हैं, उसका जवाब नहीं। 'दशराजन' पढ़ने के बाद आप स्वयं उनकी दूसरी पुस्तकों को पढ़ना चाहेंगे। 'दशराजन' कहानी है एक कबीले के मुखिया सुदास की जिसने 3400 ईसा पूर्व दस राजाओं से युद्ध लड़ा था। उसने पाँच नदियों वाली मातृभूमि की रक्षा के लिए अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया था। यहाँ पाँच नदियों की भूमि पंजाब का जिक्र है। इस युद्ध का वर्णन ऋग्वेद के सातवें मंडल में है। गुरु वशिष्ठ की सहायता और कुशल रणनीति व अपने मुट्ठीभर सैनिकों में विश्वास से उसने युद्ध ही नहीं जीता बल्कि एक नए भारत की नींव रखी। युद्ध केवल एक दिन चला, लेकिन बैंकर ने उसमें जान डालकर यह साबित कर दिया कि वे सजीव चित्रण के महारथी यूँ ही नहीं कहलाते। इसके अलावा घटनाओं के एक-एक पल की जानकारी आपको बेहद स्पष्ट व सरल तरीके से देते हैं। यह पुस्तक अंग्रेजी में 'टेन किंग्स' के नाम से प्रकाशित हुई जिसका हिंदी में अनुवाद आशुतोष गर्ग ने किया है। उन्होंने अशोक बैंकर की लय के साथ पूरा न्याय किया है। उनकी अनुवाद कला भी इस किताब में जान डालती है। इस पुस्तक में आशुतोष युद्ध के प्रत्यक्ष दर्शक होने का अनुभव उठा चुके हैं। यह अनुभव उनकी पुस्तक 'अश्वत्थामा : महाभारत का शापित योद्धा' में साफ दिखाई पडता है। उन्होंने अश्वत्थामा के रूप में एक बेहतर प्रयास किया है। हमें इस प्रयास का स्वागत करना चाहिए। साथ ही महाभारत में धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा बोले गए सबसे बड़े असत्य की कथा के साथ जिस अश्वत्थामा का मिथक जुड़ा है, उसके अंतर्सत्यों की पड़ताल अर्धसत्यों के इस युग में आगे भी की जाती रहेगी।

समीक्षक : **डॉ. मोनिका शर्मा**

लेखक : **सिद्धार्थ शंकर गौतम**

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन,
नई दिल्ली-110002

पृष्ठ : 170

मूल्य : रु. 300/-

सामाजिक चेतना का अग्रदूत : मन की बात

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने पदभार सँभालने के बाद से ही जनमानस से जुड़ाव की कई सकारात्मक कोशिशें की हैं। 'मन की बात' कार्यक्रम में आमजन से संवाद करना, ऐसा ही एक प्रभावी कदम रहा। प्रधानमंत्री का यह कार्यक्रम न केवल लोकप्रिय बना बल्कि आमजन को जागरूक करने में भी अहम भूमिका निभाई। इस मासिक कार्यक्रम में प्रधानमंत्री ने वाकई मन की बात की जिसका सीधा प्रसारण रेडियो, दूरदर्शन और सभी एफएम चैनल करते हैं। इस कार्यक्रम में आमजन से जुड़े कई मुद्दों पर देश की जनता से संवाद किया।

पीएम के इसी संवाद की चिंतनशील कड़ियों को शब्दों में सँजोने का काम किया है लेखक सिद्धार्थ शंकर गौतम ने। इस जनसंवाद का सबसे बड़ा पहलू है सामाजिक जनजागरूकता से जुड़ा भाव, जो निःसंदेह उस उद्देश्य में सफल भी हुआ जिसे लेकर पीएम मोदी ने इस जनसंवाद की शुरुआत की थी। लेखक ने भी इसी उद्देश्य से 20 अध्यायों में प्रधानमंत्री की आमजन से की गई मन की बात के सकारात्मक बदलावों को लिपिबद्ध किया है, जो एक संग्रहणीय दस्तावेज बन गया है। यकीनन लोककल्याण से जुड़े इस जनसंवाद का यह किताबी रूप भावी पीढ़ियों के लिए सहेजने योग्य है।

2014 में स्वच्छ भारत अभियान के विषय पर पहली बार प्रधानमंत्री मोदी ने जनसंवाद किया। उन्होंने स्वच्छता का संदेश देते हुए इसके महत्त्व को रेखांकित किया और अपने विचार साझा किए जिन्हें लोगों ने सुना और अपना समर्थन भी दिया। मन की बात के जरिए स्वच्छता को जनांदोलन बनाने में प्रधानमंत्री बहुत हद तक सफल भी रहे जिसका असर हमारे परिवेश में भी दिखाई देने लगा है। प्रधानमंत्री के इस पहले जनसंवाद का उद्देश्य 2019 तक महात्मा गाँधी के स्वच्छ भारत के सपने को धरातल पर उतारने का है। सफाई से जुड़े ही अगले अध्याय में 'खुले में शौच से मुक्त होता भारत' में भी स्वच्छता से संबंधित बातें शामिल हैं।

पीएम मोदी के जनसंवाद प्रोग्राम का दूसरा अहम विषय यही था जो केवल सफाई से नहीं, आमजन के स्वास्थ्य से भी जुड़ा है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि लेखक ने न केवल प्रधानमंत्री के संवाद को शब्दों में उकेरा है बल्कि इन विषयों से जुड़े आँकड़े देते हुए हकीकत से अवगत भी कराया है। यह लेखा-जोखा इस बात को पुख्ता करता है कि जिन विषयों को देश के शीर्ष नेतृत्व ने 'मन की बात' कार्यक्रम में जनसंवाद का हिस्सा बनाया, उन पर बात किया जाना कितना आवश्यक है। अब तक ऐसे विषय अछूत बने रहे हैं जिन पर प्रधानमंत्री ने खुलकर बात की और आमजन की सलाह भी माँगी।

'खादी को मिली सामाजिक स्वीकार्यता', 'नशे की समस्या पर संज्ञान : एक सराहनीय पहल', 'पास नहीं सफल होने के लिए अर्जित करें ज्ञान', 'योग को मिली वैश्विक पहचान', 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ : एक सामाजिक पहल', 'सड़क सुरक्षा पर जागरूकता अभियान', 'अंगदान महादान पर चर्चा : मानवीय संवेदना', 'दिव्यांग नाम देकर किया जीवन सार्थक', 'जल संचय को लेकर बढ़ी जागरूकता', 'जल संचय को देनी होगी प्राथमिकता', 'प्रधानमंत्री सुरक्षित मातृत्व अभियान : गर्भवती महिलाओं के लिए वरदान', 'खेलों में नए स्तर पर पहुँचाएगी यह नई सोच', 'कश्मीर समस्या के लिए एकता और ममता को बताया मूलमंत्र', 'सेना का हर जवान भारत रत्न है' जैसे अध्यायों में प्रधानमंत्री के उन विचारों को शब्दों में उकेरा गया है जो उन्होंने 'मन की बात' कार्यक्रम के जरिए आमजन से बाँटे हैं। सभी अध्याय पठनीय हैं, क्योंकि ये हर विषय हमारी बुनियादी जरूरतों, मानवीय भावनाओं, देश के मान, सामुदायिक स्वास्थ्य और विकास को गति देने वाले कारकों से जुड़े हैं। लेखक ने इन्हें विश्लेषित करते हुए इनका और गहरे से विवेचन किया है जिसके चलते ये समस्याएँ अपने सही रूप में न केवल समझ आती हैं बल्कि इनकी गंभीरता भी पता चलती है।

निश्चित रूप से प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा किए गए इस मौखिक संवाद को लेखक ने न केवल लिपिबद्ध किया है, बल्कि हर उस विषय की गहराई से पड़ताल भी की है, जिस पर संवाद किया गया है। सभी विषयों से जुड़े उदाहरण और आँकड़े इस जनसंवाद में आमजन की बुनियादी जरूरतों और मानवीय संवेदनाओं से जुड़े हर विषय को पठनीय और मनन करने योग्य बनाते हैं। यही वजह है कि यह पुस्तक एक संदर्भ स्रोत के रूप में पाठक के हाथ में आती है। यही वजह है कि यह लिपिबद्ध जनसंवाद देश के आम नागरिकों के लिए ही नहीं, नीति-निर्माताओं के लिए भी महत्त्वपूर्ण साबित होगा।

जनमानस से जुड़ी समस्याओं पर विस्तार से चर्चा करती यह किताब एक पठनीय संकलन के रूप में देखी जा सकती है, क्योंकि इसमें लेखक सिद्धार्थ शंकर गौतम ने 'मन की बात' कार्यक्रम के संस्करणों का संकलन करने भर का काम नहीं किया है। इसमें विषयगत विश्लेषण भी शामिल है। ऐसे कई उदाहरणों को भी शामिल किया है जो बताते हैं कि लोगों ने पीएम के विचारों को आत्मसात् भी किया है। तभी तो देश के हर हिस्से के लोग न केवल स्वच्छता अभियान का हिस्सा भी बने बल्कि सीमा पर तैनात सैनिकों को संदेश भेजने में भी पीछे नहीं रहे।

सड़क सुरक्षा के प्रति सचेत होना हो या दिव्यांगों को लेकर मानवीय और सम्माननीय सोच अपनाने का पहलू, यह जनसंवाद सही मायने में जनमानस में बदलाव का आधार बना। 'सामाजिक चेतना का अग्रदूत : मन की बात', किताब को पढ़ते हुए जन सामान्य की तकलीफों को सही विश्लेषण के साथ समझना एवं आमजन से मिले सहयोग के बारे में जानना एक सुखद अहसास है।

देश के शीर्ष नेतृत्व का आमजन से जुड़ना जरूरी है, लेकिन भारत जैसी विशाल जनसंख्या वाले देश में लोगों से संवाद करना और जन कल्याण के मुद्दों पर विचार रखना और आमजन की राय लेना आसान काम नहीं था। प्रधानमंत्री मोदी ने नियमित जनसंवाद कर इसकी एक सकारात्मक शुरुआत की। 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' जैसी पहल का जिक्र हो या सरहद पर तैनात सैनिकों की फिक्र, लेखक ने हर विषय को विस्तार से समझाने की कोशिश की है, जिसमें वे बहुत हद तक सफल भी रहे हैं। जिस तरह पीएम की मौखिक रूप से मन की बात आमजन तक पहुँची, विश्वास है कि उसका यह लिपिबद्ध रूप भी जन साधारण के मन तक राह बना पाएगा।

पुस्तकें मिलीं

कृति और कृतिकार

मृदुला गर्ग

इस पुस्तक में अज्ञेय, जैनेंद्र कुमार, महादेवी वर्मा, कृष्णा सोबती, राजेंद्र यादव आदि 11 साहित्यकारों के स्मृति लेखों को प्रस्तुत किया गया है। मृदुला जी इन लेखकों के जीवन के अनछुए पहलुओं, लेखन और उस समय के समाज को बेहद सहज भाषा में प्रस्तुत करती हैं।

सस्ता साहित्य मंडल
कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001
पृ.124; रु. 180.00

अहसासों के फूल

अशोक 'अश्रु', कुंतला 'कुंतल'

यह कविता में नया प्रयोग है—दो कवियों के परस्पर काव्यात्मक संवाद का संकलन जो माधुर्य से मंडित, धर्म से समन्वित, आध्यात्मिक भाव-भूमि पर आधारित है।

राखी प्रकाशन
संजय प्लेस, आगरा
पृ.92; रु. 100.00

शिक्षा की समस्याएँ और हिंदी कथा साहित्य

डॉ. शशिप्रभा

आजादी के बाद देश में शिक्षा के स्तर, उद्देश्य और संभावनाओं पर आए दिन चर्चा होती रहती हैं, इसके बावजूद शिक्षा प्रणाली रोजगार देने के साधन से अधिक विकसित नहीं हो पा रही है। इस पुस्तक में भारत की शिक्षा की समस्याओं, उनके निदान को कथा साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर, (उ.प्र.)
पृ.280; रु. 450.00

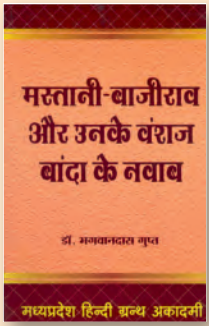

मस्तानी-बाजीराव और उनके वंशज बांदा के नवाब

डॉ. भगवानदास गुप्त

सिनेमा और कुछ टेलीविजन सीरियल के कारण बाजीराव-मस्तानी इन दिनों चर्चा में हैं। प्रख्यात इतिहासविद् की यह पुस्तक स्पष्ट कर देती हैं कि जो कुछ भी रंगीन चकाचौंध के साथ पर्दे पर परोसा जा रहा है, उसका वास्तवित इतिहास से दूर-दूर का वास्ता नहीं है। कई दुर्लभ चित्रों, बांदा नवाब के कुल के सिजरे सहित बहुत-से प्रमाण मस्तानी-बाजीराव के प्रेम प्रसंग व उस समय की राजनीति को रोचक तरीके से प्रस्तुत करते हैं।

मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी
बाणगंगा, भोपाल
पृ.152; रु. 80.00

भागता हुआ समय

स्वदेश भारती

'सप्तक' के चर्चित हस्ताक्षर श्री भारती की कविताएँ मनुष्य और प्रकृति के जुड़ाव की शब्द संरचना हैं। ये शेल्पिक आग्रहों से दूर, बिना किसी लाग-लपेट के अपनी बात कहती हैं। संकलन में 200 से अधिक कविताएँ संकलित हैं।

आशियान प्रेस, कोलकाता
पृ.254; रु. 300.00

यहीं कहीं होती थी जिंदगी

अजीत कौर, *अनुवाद :* **सुभाष नीरव**

इस संकलन की सभी 10 कहानियाँ समय की संधियों-दुरभिसंधियों में फँसा सुख-दुःख या दिनमान, प्रेम, परिवार, निजता में रची-पगी कहानियाँ एक दार्शनिक वैचारिक संपदा से संपन्न हैं।

किताबघर प्रकाशन
दरियागंज, नई दिल्ली
पृ.184; रु. 300.00

पवित्र माटी

इ. नमोनाथ

मूल मैथिली में लिखा गया यह उपन्यास एक रूपसी महिला के शोषण की त्रासदीभरी कहानी है जो समाज और समय के क्रूर प्रहारों को, अदम्य साहस और संकल्प से सामना करते हुए टूट जाती है, लेकिन झुकती नहीं है।

रूना प्रकाशन
कांके रोड, राँची
पृ.226; रु. 150.00

विषाद से प्रसाद तक

डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'

यह मूल रूप से लेखक द्वारा विभिन्न गोष्ठियों में दिए गए आलेखों का संकलन है, जिनमें जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, विष्णु प्रभाकर, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, निराला आदि की रचनाओं पर आलोचनात्मक आख्यान हैं।

निखिल पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स

शाहगंज, आगरा

पृ.176; रु. 900.00

यही है शांतिनिकेतन

जयप्रकाश सिंह बंधु

यह पुस्तक विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर के आदिकालीन आश्रम की स्थापना से लेकर उसके संघर्ष एवं विकास की कहानी बड़ी रोचकता से प्रस्तुत की गई है। पूरी पुस्तक छोटी-छोटी घटनाओं और आकर्षक रेखाचित्रों के कारण बेहद पठनीय बन जाती है।

लेखक स्वयं प्रकाशक, सलकिया हावड़ा

पृ.184; रु. /- (उल्लेख नहीं)

एक प्याला जीवन कल्प के नाम

मिन्नी पंडित, अमिताभ पंडित

अनुवाद : **अरविंद कांत त्रिपाठी**

यह पुस्तक उम्र के साथ होने वाले रोग, शिथिलता से निजात पाने और स्वयं को ऊर्जावान बनाए रखने में उपयोगी कुछ ऐसे पेय पदार्थों की जानकारी देती है जो कि पूरी तरह वनस्पति पर आधारित हैं।

वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

पृ.244; रु. 225.00

हाशिए पर उगते हुए सूरज

डॉ. दीप्ति गुप्ता

इंसान को इंसानियत पर कायम रहने का संदेश देने वाली ये कहानियाँ आम पाठक की अपनी घटनाओं का लेखा-जोखा प्रतीत होती हैं। अधिकांश कहानियों के पात्र गरीब, उपेक्षित और संघर्षरत हैं जो कि एक उम्मीद जगाते हैं।

अमन प्रकाशन

रामबाग, कानपुर

पृ.112; रु. 125.00

उत्तराखंड की लोकभाषाएँ

धर्मेंद्र पंत, नीरज जोशी, शंकर सिंह भाटिया

आधुनिकता की आँधी में गुम हो रही, लुप्त हो रही उत्तरांचल की कई बोलियों को सहेजने के इस प्रयास में पहाड़ के कई चर्चित लेखकों के आलेख व शोध हैं।

पंखुड़ी, स्वयंसेवी संस्था, मयूर विहार फेज-1, दिल्ली

पृ.192; रु. 1100.00

मेक इन इंडिया : विकसित भारत की ओर बढ़ते कदम

प्रो. टी.वी. कट्टीमनी

बदलते परिवेश में भारत सरकार की अभिनव योजना को लेखक ने 'आइए, भारत में बनाएँ' कहा है। इस पुस्तक में सरकार की इस पूरी योजना के विभिन्न आयाम, उपलब्धियों को विस्तार से बताया गया है। इस योजना से देश की आर्थिक स्थिति तो सशक्त होगी ही, रोजगार के भी असीम अवसर उपलब्ध होंगे।

इ.गां. राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय,

अमरकंटक, अनूपपुर, म.प्र.

पृ.266; रु. 500.00

गुल्लू का गाँव

डॉ. प्रदीप शुक्ला

बच्चों के लिए गाने योग्य इस कविताओं के संकलन को इस वर्ष का 'हरिकृष्ण देवसरे बाल साहित्य पुरस्कार' प्रदान किया गया है। लेखक एक बालरोग विशेषज्ञ चिकित्सक हैं, लेकिन उनका ग्राम्य जीवन के प्रति अनुराग और बच्चों की पठन क्षमता और पठनीयता की समझ बेमिसाल है।

उत्तरायण प्रकाशन

आशियाना कॉलोनी, लखनऊ

पृ.120; रु. 350.00

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की स्थापना के 60 वर्ष पूरे होने पर 'भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता का बोध' विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी

"किताबों की दुनिया एक अद्भुत दुनिया है।... किताबों की अपनी अलग गंध होती है और किताब पढ़ने का अपना आनंद भी।" मानव संसाधन विकास मंत्री श्री प्रकाश जावड़ेकर ने ये उद्गार एक वीडियो संदेश के माध्यम से दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन अवसर पर व्यक्त किए। विदित हो कि न्यास ने अपनी स्थापना दिवस को दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के द्वारा समारोहपूर्वक मनाया। 'भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता का बोध' शीर्षक संगोष्ठी के मुख्य विषय के अंतर्गत 1 एवं 2 अगस्त, 2017 की अवधि में अलग-अलग उप-विषयों में कुल छह सत्रों में संगोष्ठी के आयोजन हुए। मंत्री महोदय ने अपने संदेश के द्वारा कहा कि "स्वतंत्रता के बाद देश में शिक्षा और साक्षरता बढ़ी है और शिक्षा बढ़ने से पुस्तक पढ़ने वाले लोग भी बढ़े।" श्री जावड़ेकर ने न्यास को तीन साल का एक्शन प्लान, सात साल का स्ट्रैटेजी एवं 15 साल का एक विजन तैयार करने का सुझाव दिया, फिर बोले– "इसी से एक नया विश्व तैयार होगा।"

सत्र के मुख्य वक्ता, प्रख्यात लेखक व विचारक डॉ. कृष्ण गोपाल ने कहा कि "कोई भी साहित्य अधूरा रहेगा, यदि वह राष्ट्र-भाव नहीं जगाता।" उन्होंने कहा कि "भारत के साहित्य सृजन में वेदकाल से राष्ट्र व मानवीय संवेदना केंद्र में रहे हैं।" उन्होंने भारत के दर्शन को आदिकाल से 'सर्वसमावेशी' बताते हुए कहा कि "शकों-हूणों ने भी भारत पर आक्रमण किया, किंतु भारतीय साहित्यकारों के विचारों से प्रभावित होकर वे भी देश में ही समाहित हो गए।" विशिष्ट अतिथि, केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला के कुलपति डॉ. कुलदीप चंद अग्निहोत्री ने कहा, "राष्ट्रीयता एक अदृश्य, अमूर्त वस्तु है, लेकिन बिना राष्ट्रीयता के कोई राष्ट्र नहीं होता।" उन्होंने आगे कहा, "राष्ट्रीयता का अनुभव हृदय से होता है... 'सिटीजन' होने से 'राष्ट्रीयता' खत्म नहीं होती।"

सत्र की अध्यक्षता कर रहीं लेखिका तथा गोवा की राज्यपाल मान्या श्रीमती मृदुला सिन्हा ने अपने सारगर्भित संबोधन में राष्ट्रीयता और पुस्तक पर अपने भावोद्गार व्यक्त किए। उन्होंने कहा, "किसी भी व्यक्ति की अंतश्चेतना में जो 'सत्' का भाव दबा होता है वही राष्ट्रीयता है। जिस तरह से गर्म राख के भीतर अग्नि का टुकड़ा दबा हुआ होता है, राष्ट्रीयता भी उसी दबी हुई चिनगारी की तरह होती है।" उन्होंने कहा, "वृक्ष की तरह ही पुस्तक भी किसी की मित्र और गुरु होती है।"

कार्यक्रम की शुरुआत राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के अध्यक्ष श्री बल्देव भाई शर्मा के बीज वक्तव्य से हुई। उन्होंने कहा, "खुशी की बात है कि हमने (रा.पु. न्यास) अपनी ज्ञान-यात्रा के 60 वर्ष पूरे कर लिए हैं। हमें वर्तमान पीढ़ी में राष्ट्रीयता का बोध भरना है और यह हम

साहित्य के माध्यम से ही कर सकते हैं।" न्यास अध्यक्ष ने न्यास की कार्यप्रणाली तथा कई नवीन पहल एवं उपक्रमों की भी जानकारी दी। न्यास की स्थापना के 60 वर्ष पूरे होने पर कई नई पहलों के बारे में बताया कि न्यास आगामी समय में राष्ट्रीय पंचायत पुस्तक मेला, राष्ट्रीय संस्कृत पुस्तक मेला व राष्ट्रीय बाल पुस्तक मेला लगाने जा रहा है। 'हर हाथ एक किताब' उन्होंने न्यास की अभिनव व अनोखी योजना निरूपित करते हुए 'पुस्तक दान' अभियान का भी उल्लेख किया।

कार्यक्रम के प्रारंभ में उपस्थित मंचस्थ अतिथियों द्वारा दीप प्रज्वलन किया गया। तदंतर सभी अतिथियों को शॉल तथा स्मृति चिह्न देकर सम्मानित किया गया। संबोधन शुरू होने से पूर्व, न्यास की सद्यः प्रकाशित पाँच पुस्तकों का लोकार्पण किया गया। ये पुस्तकें थीं—बिहार : इंद्रधनुषीय लोकरंग (ले. : मृदुला सिन्हा), महाजीवन : श्यामा प्रसाद मुखर्जी (अनाथबंधु चटर्जी), भारत राष्ट्र और उसकी शिक्षा पद्धति (नीरजा माधव), भारत की मौलिक एकता (वासुदेव शरण अग्रवाल) तथा फिजिक्स इन एनशिएंट इंडिया (शंकर गोपाल)।

पहला दिन : 1 अगस्त, 2017

प्रथम सत्र की संगोष्ठी का विषय था— साहित्य में स्वदेश-भाव। वक्ता थे— श्री प्रेम शंकर त्रिपाठी (कोलकाता), श्री अग्नि शेखर (जम्मू-कश्मीर) तथा डॉ. अवनिजेश अवस्थी (दिल्ली)। डॉ. सोनल मानसिंह की अध्यक्षता में संपन्न इस सत्र में वक्ताओं ने साहित्य में स्वदेश-भाव को अपने-अपने ढंग से निरूपित किया। वक्ताओं का मूल स्वर यह रहा कि भारतीय साहित्य में स्वदेश-भाव वेदों से चला आ रहा है। 19वीं और 20वीं सदी में भारतेंदु, बंकिम, टैगोर, भारतेंदु प्रसाद, निराला, महादेवी, सुभद्रा सहित अनेक साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में राष्ट्रप्रेम और स्वदेश-भाव को पर्याप्त जगह दी।

दूसरे सत्र की संगोष्ठी का विषय था—बाल मन : लेखन की चुनौतियाँ। वक्ता थे—श्री प्रकाश मनु (फरीदाबाद), डॉ. क्षमा शर्मा (दिल्ली) एवं डॉ. दर्शन सिंह आशट (पटियाला)। श्री कृष्ण कुमार अष्ठाना की अध्यक्षता में संपन्न इस सत्र में वक्ताओं ने बाल मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर लेखन की चुनौतियों पर अपने-अपने विचार रखे। विचार-विमर्श में सभी वक्ताओं का यह मूल भाव रहा कि बाल साहित्यकार बाल मन को समझकर उनके अनुकूल रचना करें। ये आज के युगधर्म और राष्ट्रधर्म के अनुकूल हों। बाल मन में राष्ट्र चेतना का उदय हो यह भी अपेक्षित है।

तीसरे सत्र की संगोष्ठी का विषय था—अस्मिता के प्रश्न और राष्ट्रीयता। वक्ता थे—डॉ. रवि टेकचंदाणी (दिल्ली) तथा श्री लीलाधर जगूड़ी (देहरादून)। श्री दया प्रकाश सिन्हा की अध्यक्षता में आयोजित इस सत्र में अस्मिता के प्रश्न पर राष्ट्रीयता के संदर्भ में विचार किया गया। विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त करते हुए राष्ट्र की अस्मिता का सम्मान करने का आह्वान किया। राष्ट्र की अस्मिता के अनेक आयाम हैं, विद्वानों ने विचार-विमर्श में यह भी कहा।

दूसरा दिन : 2 अगस्त, 2017

प्रथम सत्र की संगोष्ठी का विषय था—जनजातीय साहित्य : परिधि से केंद्र की ओर। वक्ता थे—प्रो. टी.वी. कट्टीमनी (अमरकंटक), श्री अशोक भगत (राँची) तथा श्री रुद्रनारायण पाणिग्रही (बस्तर)। प्रो. नंदकिशोर पांडे, निदेशक-केंद्रीय हिंदी संस्थान, की अध्यक्षता में संपन्न विचार-विमर्श में सभी विद्वान् इस बात पर एकमत थे कि जनजातीय साहित्य को अब महत्त्व मिलने लगा है और यह साहित्य की मुख्य धारा से मिलने लगा है। यह भी कि जनजातीय साहित्य के माध्यम से राष्ट्र अब इस वंचित समाज से परिचित होने लगा है और इस समाज, समाज के लोग तथा जनजातीय भाषाओं के प्रति आम जन की रुचि बढ़ी है।

दूसरे सत्र की संगोष्ठी का विषय था—लोक साहित्य में भारत। वक्ता थे—श्रीराम परिहार (खंडवा), डॉ. मालिनी अवस्थी (दिल्ली) तथा यतींद्र मिश्र (अयोध्या)। डॉ. देवेंद्र दीपक की अध्यक्षता में संपन्न इस संगोष्ठी में वक्ताओं ने भारत को लोक साहित्य के अनुप्राणित एक अनुपम भूखंड बताया जहाँ कंठों में सुरक्षित साहित्य आज लिखित परंपरा से मिल गया है। विद्वानों ने कहा कि भारत किसी एक रंग से निर्मित भूमि नहीं है बल्कि अनेक परंपराओं, कलाओं, साहित्य आदि से निर्मित बहुरंगी भूखंड है।

तीसरे सत्र की संगोष्ठी का विषय था—राष्ट्रीय जागरण और महिला लेखन। वक्ता थीं—सुश्री ऋता शुक्ल (राँची), सुश्री नीरजा माधव (वाराणसी) तथा सुश्री अद्वेता काला (गुड़गाँव)। वयोवृद्ध साहित्यकार सुश्री मालती जोशी की अध्यक्षता में संपन्न इस सत्र में वक्ताओं ने प्रस्तुत विषय पर अपने विचार रखते हुए राष्ट्रीय जागरण में महिला लेखकों की भूमिका को रेखांकित किया। वक्ताओं ने कहा कि 1857 के बाद से ही

छिटपुट रूप में महिला लेखकों द्वारा राष्ट्रवादी लेखन होता रहा। राष्ट्रीय जागरण में सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा आदि के रचनात्मक अवदान को भी रेखांकित किया गया।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास स्थापना दिवस का समापन

"भारत सरकार एक राष्ट्रीय पुस्तक प्रोन्नयन नीति को अंतिम रूप देने पर काम कर रही है, जो समाज में पठन-संस्कृति के प्रोन्नयन के लिए पुस्तक प्रकाशन, लेखन और वितरण के संपूर्ण क्षेत्र की एक नीति दिशा उपलब्ध कराएगी।" माननीय मानव संसाधन विकास राज्य मंत्री, डॉ. महेंद्रनाथ पांडेय ने यह कहा। वे 'भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता का बोध' शीर्षक संगोष्ठी के समापन सत्र में बोल रहे थे। उन्होंने कहा कि "भारतीय साहित्य में प्रारंभ से ही हमें राष्ट्र-भाव दिखाई पड़ते हैं। हमारा भारतीय साहित्य इस राष्ट्र-भाव से भरा पड़ा है।" मंत्री महोदय ने अपने संबोधन में कहा कि "भारत अपनी भौगोलिक अवस्थिति में तीन ओर से समुद्र मार्ग से खुला है। हम पर सदियों पहले से बाहरी आक्रमण होते रहे और बाद में लगभग दो सौ वर्षों तक अंग्रेजों की दासता में रहे किंतु तब भी हम अपनी सभ्यता, संस्कृति और साहित्य को बचाए रखने में समर्थ हुए और आज हम एक सशक्त भारत की ओर बढ़ रहे हैं। इस स्थिति के लिए हमारे ग्रंथ और हमारे यहाँ व्याप्त राष्ट्र-भाव का प्रभूत योगदान रहा है।" श्री पांडेय ने न्यास के पुस्तोन्नयन कार्य तथा पुस्तक संस्कृति के विकास हेतु न्यास की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इस अवसर पर कोच्चि से पधारे श्री रंगाहरि जी ने कहा कि वेदकाल से राष्ट्रीयता की भागीरथी काल के प्रवाह में और भी अधिक प्रशस्त हुई है। उन्होंने कहा कि 'राष्ट्र' और इससे जुड़े अनेक पदों का प्राचीन काल से ही प्रयोग होता आया है। उन्होंने 'विष्णु पुराण' में वर्णित उस तथ्य का उल्लेख किया जिसमें 'भारत क्या है' का उत्तर इस प्रकार दिया गया— जो सागर के उत्तर में और पर्वत के दक्षिण में है। उन्होंने भारत के प्रादेशिक साहित्य के संबंध में कहा कि लगभग एक हजार ईसवीं से क्षेत्रीय साहित्य की शुरुआत हुई।

इस अवसर पर प्रख्यात हिंदी लेखक श्री नरेंद्र कोहली का भी सारगर्भित संबोधन हुआ। इससे पूर्व, अपने स्वागत संबोधन में न्यास अध्यक्ष श्री बल्देव भाई शर्मा ने साहित्य को 'मनुष्यता का बोध जगाने वाला' निरूपित करते हुए प्रस्तुत विषय 'भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता का बोध' की आवश्यकता को रेखांकित किया। उन्होंने न्यास की अनेक नई योजनाओं की भी जानकारी दी। उन्होंने कहा, "विकास का मार्ग ज्ञान के द्वारा ही आगे बढ़ता है।" कार्यक्रम के दौरान दो पुस्तकों का लोकार्पण भी हुआ। ये थीं—'श्यामा प्रसाद मुकर्जी : एक शिक्षाविद्' (नंदकिशोर गर्ग, नम्रता शर्मा) तथा 'आपकी सेहत' (विजय मित्तल)।

कार्यक्रम का समापन न्यास की निदेशक डॉ. रीता चौधरी के धन्यवाद ज्ञापन से हुआ।

प्रस्तुति : दीपक कुमार गुप्ता

ऐतिहासिक काकोरी कांड की 92वीं वर्षगाँठ

'काकोरी से पहले : काकोरी के बाद' और 'कमाल का जादू' का लोकार्पण

ऐतिहासिक काकोरी कांड की 92वीं वर्षगाँठ पर 9 अगस्त को लखनऊ के पुराना किला स्थित शहीद स्मारक एवं स्वतंत्रता संग्राम शोध केंद्र में बड़े अनोखे अंदाज में मनाई गई। मुख्य वक्ता प्रख्यात इतिहासविद् प्रो. डॉ. हरीश के. पुरी ने इस मौके पर कहा कि अंग्रेजों की गुलामी से तो देश को आजादी मिल गई है, मगर संकीर्ण राष्ट्रवाद और धर्मांधता से भारतीयता को आजाद करना अभी बाकी है। उन्होंने 'गदर' नाम से प्रसिद्ध प्रथम स्वाधीनता संग्राम के दुर्लभ संस्मरण सुनाते हुए बताया कि किस तरह देश के क्रांतिकारियों को गदर के उस दौर ने प्रभावित किया और उनका जीवन दर्शन भी बदलकर रख दिया। वे जात-पात और क्षेत्रवाद से ऊपर उठकर सोचने लगे और उनकी नजर में 'हर हिंदुस्तानी का भला' ही जीवन का मुख्य उद्देश्य हो गया।

वयोवृद्ध स्वतंत्रता सेनानी डॉ. बैजनाथ सिंह ने कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए कहा कि स्वतंत्रता संग्राम के दौरान क्रांतिकारियों और देश के महान नेताओं द्वारा दी गई कुर्बानियों के कारण ही यह देश आज एक वैश्विक महाशक्ति बनने की राह पर है। उन्होंने देश को फिरकों में बाँटने, आतंकियों को महिमामंडित करने और भ्रष्टाचार के हक में सामाजिक विरोध के कम होने को देश की आजादी के लिए खतरा बताया।

इस कार्यक्रम में न्यास की दो पुस्तकों—डॉ. रश्मि कुमारी की 'काकोरी से पहले : काकोरी के बाद' और डॉ. अशोक कुमार शर्मा की 'कमाल का जादू' का लोकार्पण हुआ। दोनों पुस्तकों के लेखकों ने बारी-बारी से अपनी किताबों के बारे में बताया। प्रो. प्रमोद कुमार श्रीवास्तव ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में काकोरी कांड के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए डॉ. रश्मि कुमारी की पुस्तक और उनके शोध अध्ययनों का उल्लेख किया। बाल साहित्यकार संजीव जायसवाल 'संजय' ने डॉ. अशोक कुमार शर्मा की पुस्तक 'कमाल का जादू' की समीक्षा प्रस्तुत करते हुए बताया कि बच्चों के मन में छिपे भय और आत्मविश्वास की कमी को दूर करना तभी संभव है जब उनको ऐसी परिस्थितियों का पूर्वानुमान करके सतर्क और सजग रहने को प्रेरित किया जाए।

अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति, लंदन का कवि सम्मेलन।

अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति, लंदन द्वारा आयोजित कवि सम्मेलन में मुख्य अतिथि थे—लंदन एसेंबली के सदस्य डॉ. ओंकार सेहोता और अध्यक्षता कर रहे थे—भारतीय उच्चायोग के हिंदी एवं संस्कृति अधिकारी श्री तरुण कुमार। कवियों और शायरों में शामिल थे—सोहन राही, चमन लाल चमन, साथी लुधियानवी, नीलम जोगन, उषा राजे सक्सेना, दिव्या माथुर आदि। कवि सम्मेलन का मुख्य आकर्षण थीं—भारत से पधारी गीत एवं ग़ज़लकार मधु चतुर्वेदी। कार्यक्रम के दौरान मधु चतुर्वेदी का सम्मान किया गया और वरिष्ठ लेखक तेजेंद्र शर्मा को महारानी एलिजाबेथ द्वारा एम.बी.ई. मिलने पर बधाई दी गई। श्री शर्मा ने अपनी ताजातरीन ग़ज़ल सुनाई। 'ज़िंदगी का है ख़ज़ाना दोस्ती/दोस्तों को रोज़ ना बदला करो।' समारोह में के.बी.एल. सक्सेना, इंदर स्याल, काउंसलर जे.सी. ग्रेवाल और नृत्य निर्देशक सुषमा मेहता भी उपस्थित थे।

पुस्तक प्रकाशन प्रशिक्षण कार्यक्रम : कोचीन

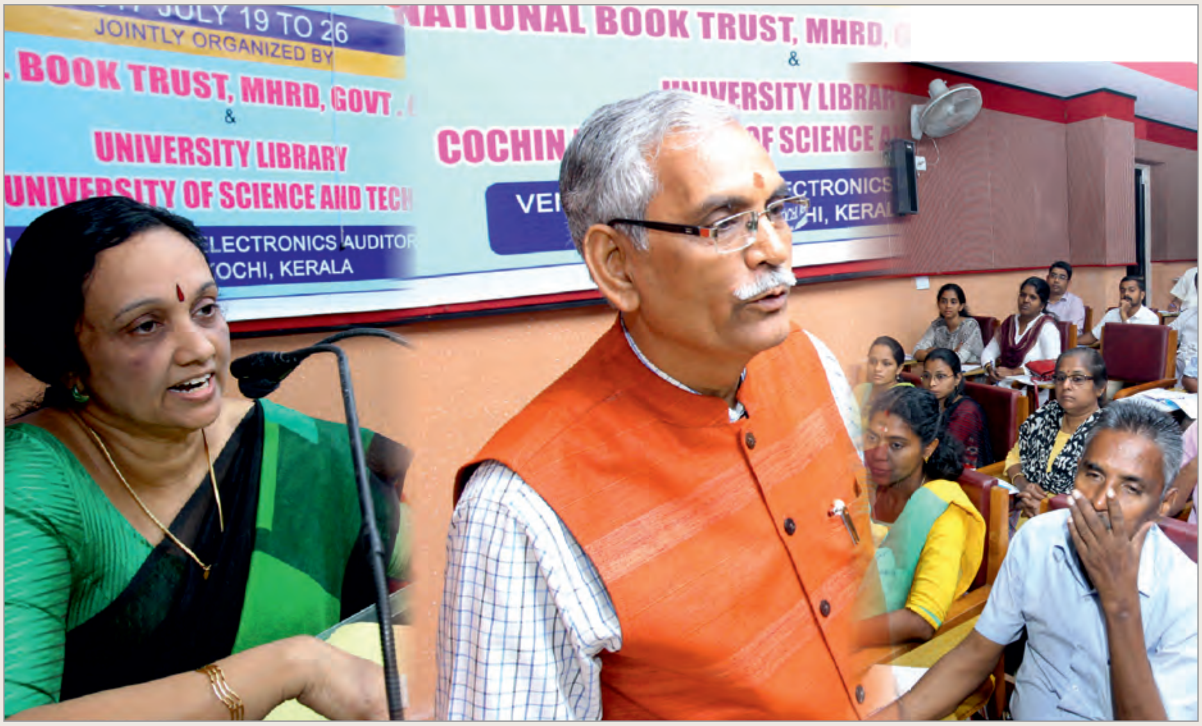

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत एवं कोचीन यूनिवर्सिटी ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी के संयुक्त तत्वावधान में 19-26 जुलाई, 2017 तक कोचीन, केरल में पुस्तक प्रकाशन प्रशिक्षण सत्र आयोजित किया गया।

पुस्तक प्रकाशन प्रशिक्षण कार्यक्रम : दिल्ली

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा 4-11 अगस्त, 2017 तक दिल्ली विश्वविद्यालय के अदिति महाविद्यालय, बवाना, दिल्ली में केवल छात्राओं हेतु 'पुस्तक प्रकाशन में व्यवसायोन्मुखी सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम' का आयोजन किया गया।

लेखकों के लिए

पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की त्रैमासिक पत्रिका

पत्रिका का **अप्रैल-जून, 2018** अंक **बाल साहित्य** पर केंद्रित होगा।

1. सामग्री अधिकतम तीन हजार शब्दों तक हो
2. पहले से छपी सामग्री भेजने से बचें
3. रचना के साथ संदर्भ के चित्र आदि भी भेजें
4. लेखक का चित्र, पाँच पंक्ति में परिचय (संपूर्ण जीवनवृत्त नहीं) भेजें, जिसमें संप्रति, प्रकाशन, सम्मान आदि का विवरण हो। संपर्क के लिए पता, ई-मेल या फोन नंबर जो भी सार्वजनिक करना चाहें।

सामग्री डाक से या ई-मेल से भेज सकते हैं। ध्यान रहे कि रचना कृति, यूनिकोड या फिर शिवा मीडियम फॉण्ट में एम.एस. वर्ड या पेजमेकर में ही हो।

रचना 15 जनवरी, 2018 तक यहाँ भेज सकते हैं :

संपादक (पुस्तक संस्कृति)

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 नेहरू भवन, वसंत कुंज, संस्थानिक क्षेत्र, फेज-2, नई दिल्ली-110070

ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com

दूरभाष : 011-26707758, 26707876

'पुस्तक संस्कृति' के वार्षिक सदस्य बनें

त्रैमासिक पत्रिका का **वार्षिक सदस्यता शुल्क** 125/- रु. है।

पत्रिका का सदस्यता शुल्क भेजने के लिए बैंक का विवरण निम्नांकित है :

CANARA BANK, Branch: Vasant Kunj,
New Delhi 110070.
A/C No.: **31591010003159**

इसके अलावा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय चेक, ड्राफ्ट या धनादेय भी भेजा जा सकता है।

शुल्क भेजने के पश्चात् कृपया फोन अथवा पत्र द्वारा सूचना अवश्य दें।

पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की त्रैमासिक पत्रिका

के सदस्य बनें

सदस्यता प्रपत्र

नाम : ____________________

पता : ____________________

जिला : __________ शहर __________ राज्य __________ पिन कोड __________

फोन : __________ मोबाइल : __________ ई-मेल : __________

मैं राशि रु.125/- वार्षिक सदस्यता हेतु (बैंक ड्राफ्ट/नगद) __________ द्वारा भेज रहा/रही हूँ (संलग्न)। सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय, सदस्यता प्रपत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेजें :

संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 नेहरू भवन, वसंत कुंज, संस्थानिक क्षेत्र, फेज-2,
नई दिल्ली-110070

ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com

दूरभाष : 011-2670758/26707876

ऑनलाइन शुल्क भेजने का विवरण इस प्रकार है :

For	National Book Trust, India
Bank	Canara Bank
Branch	Vasant Kunj, New Delhi-110070
A/c No.	3159101000299
IFSC CODE	CNRB0003159
MICR CODE	110015187

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

स्थापना के 60 साल : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए प्रकाशन

अमिया

प्रभात, चित्र : धीरज सोमबासी

इस पुस्तक में एक बच्ची की बालसुलभ हरकतों के कुछ किस्से हैं जो हँसाते हैं, गुदगुदाते हैं, कभी-कभी बाल-मन की गहराइयों का अहसास भी कराते हैं।

पृ. 32; रु. 55.00

अद्भुत जीवन-विलक्षण गणित

महेश दुबे

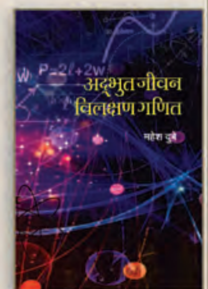

यह पुस्तक विश्व और भारत के कई ऐसे महान गणितज्ञों के जीवन और अन्वेषणों की जानकारी देती हैं जिनके योगदान की नींव पर आधुनिक यांत्रिकी, विज्ञान और गणित खड़ा है।

पृ. 172 रु. 205.00

दयालचंद सोनी

रमेश थानवी

भारतीय परिस्थितियों में प्राथमिक शिक्षा के नवाचार प्रयोगों में 'माढ साब' के नाम से मशहूर, शिक्षा को समर्पित मनीषी दयालचंद सोनी का बड़ा योगदान है। यह पुस्तक श्री सोनी के व्यक्तित्व और कृतित्व का लेखा-जोखा है।

पृ. 98 रु. 150.00

चित्रा मुद्गल की चुनिंदा बाल कहानियाँ

चित्रा मुद्गल, *चित्र* **: अतुल श्रीवास्तव**

हिंदी की प्रख्यात लेखिका द्वारा सन् 1978 से लेकर 1989 तक के बीच लिखी गई चुनिंदा 10 बाल कहानियों का संकलन।

पृ. 80 रु. 105.00

डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी : एक शिक्षाविद्

डॉ. नंदकिशोर गर्ग, डॉ. नम्रता शर्मा

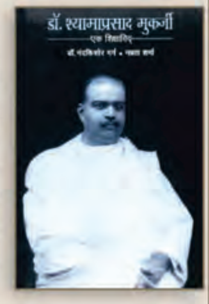

प्रखर राष्ट्रवादी डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी कलकत्ता विश्वविद्यालय के सबसे कम उम्र के कुलपति रहे हैं और अपने कार्यकाल में उन्होंने दीक्षांत समारोह में रवींद्रनाथ टैगोर में आमंत्रित कर बांग्ला में भाषण की शुरुआत करवाई थी। यह पुस्तक डॉ. मुकर्जी के शिक्षा के क्षेत्र में योगदान का प्रामाणिक दस्तावेज है।

पृ. 244 रु. 270.00

नाद बिन्दु

डॉ. जोगेंदर कैरों, *अनुवाद* **: सुभाष नीरव**

यह पंजाबी के प्रसिद्ध उपन्यास का हिंदी अनुवाद है जो योग-भोग की असीमितता बनाम असंतुलित जीवन पर नीति पर केंद्रित है। यह योग साधना की बारिकियों के कथानक पर बुनी गई रचना है।

पृ. 110 , रु. 135.00

एक था कार्वर

वीणा गवाणकर, *अनुवाद* **: संध्या भाटलेकर**

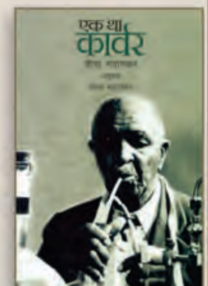

मूल मराठी में लिखी गई यह पुस्तक अमेरिका के पहले अश्वेत कृषि वैज्ञानिक जॉर्ज वाशिंगटन कार्वर के मार्मिक जीवन-संघर्ष का वर्णन है। डॉ. कार्वर अश्वेत होने के कारण गुलाम थे, लेकिन वे अपनी अंतिम साँस तक खेती-किसानी से बेहतर फसल हेतु प्रयोग करते रहे।

पृ. 150 रु. 170.00

nbt.india
एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707761; ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com; वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in